[2013] 3 उम. नि. प. 107

पूर्णो अगितोक संगमा

बनाम

प्रणब मुखर्जी

5 दिसम्बर/11 दिसम्बर, 2012

मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर, न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम्, न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर, न्यायमूर्ति चेलामेश्वर और न्यायमूर्ति रंजन गोगोई

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 58, 102 और 191 – राष्ट्रपतीय निर्वाचन – लाभ का पद धारण करने के आधार पर अनुच्छेद 58(2) के अधीन निरर्हता – किसी पद को लाभ के पद के रूप में प्रवर्गीकृत करना मात्र पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि किसी पद को लाभ का पद केवल तभी समझा जाना चाहिए जब उस पद के साथ विभिन्न धनीय फायदे जुड़े हों या वह पद धनीय फायदे पहुंचाने में समर्थ हो ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 58, 145 और 71 [सपठित संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 और उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के नियम 13 और 20] – राष्ट्रपतीय निर्वाचन – निरर्हता – लाभ का पद – चूंकि भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अध्यक्ष का पद लाभ का पद नहीं है और उसे 1959 के अधिनियम द्वारा भी लाभ के पद के आधार पर निरर्हता की परिधि से अपवर्जित किया गया है, इसलिए राष्ट्रपति के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती देने वाली अर्जी नियमित सुनवाई किए जाने योग्य नहीं है कि नामनिर्देशन पत्र फाइल करने के समय वह उस पद को धारण किए हुए था ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 58 और अनुच्छेद 102 [सपठित संसद् में मान्यताप्राप्त दलों तथा समूहों के नेता और मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) अधिनियम, 1998 की धारा 1] – राष्ट्रपतीय निर्वाचन – सदन के नेता और दल के नेता के पद – निर्वाचन संबंधी निरर्हता – चूंकि सदन के नेता या संसद् में दल के नेता को उस वेतन और परिलब्धियों के अलावा कोई पारिश्रमिक संदत्त नहीं किया जाता है, जो ऐसे धारक को तब संदेय होती है जब वह केन्द्रीय सरकार के मंत्री का पद धारण करता है इसलिए इन पदों के धारक राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए निरर्हित नहीं होते हैं तथा केन्द्रीय/राज्य सरकारों के मंत्रियों के बारे में यह नहीं समझा जाता है

कि वे अनुच्छेद 58(2) और अनुच्छेद 102(1) के अधीन निरर्हता के प्रयोजनार्थ लाभ का कोई पद धारण किए हुए हैं ।

प्रस्तुत मामले में अर्जीदार तारीख 19 जुलाई, 2012 को हुए राष्ट्रपतीय निर्वाचनों में एक अभ्यर्थी था, जिसका परिणाम तारीख 22 जुलाई, 2012 को घोषित किया गया था । अर्जीदार और प्रत्यर्थी केवल दो ही सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट अभ्यर्थी थे । प्रत्यर्थी ने जो मत प्राप्त किए थे उनका मूल्य 7,13,763 था और उसे भारत के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित घोषित किया गया था । दूसरी ओर, अर्जीदार ने जो मत प्राप्त किए थे उनका मूल्य 3,15,987 था । अर्जीदार ने भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती दी है कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 58 के उपबंधों के आधार पर राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र नहीं था । अर्जीदार के अनुसार, प्रत्यर्थी राष्ट्रपतीय निर्वाचनों के लिए अभ्यर्थी के रूप में नामनिर्देशन पत्र फाइल करने के समय भारतीय सांख्यिकी संस्थान परिषद्, कलकत्ता के अध्यक्ष का पद धारण किए हुए था, जो कि उसके अनुसार एक लाभ का पद था । ऐसा प्रतीत होता है कि तारीख 2 जुलाई, 2012 को नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा के समय अर्जीदार के प्राधिकृत प्रतिनिधि द्वारा, जिसने यह दलील दी थी कि प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्र खारिज किए जाने योग्य हैं, रिटर्निंग आफिसर के समक्ष इस आशय का एक आक्षेप उठाया गया था । उक्त दलील के उत्तर में, प्रत्यर्थी के प्रतिनिधि ने अर्जीदार द्वारा किए गए आक्षेपों का उत्तर फाइल करने के लिए दो दिन के समय की ईप्सा की थी । इसके पश्चात्, अर्जीदार द्वारा किए गए आक्षेपों के संबंध में तारीख 3 जुलाई, 2012 को प्रत्यर्थी की ओर से रिटर्निंग आफिसर के समक्ष एक लिखित उत्तर फाइल किया गया था, जिसके साथ तारीख 20 जून, 2012 के त्यागपत्र की प्रति भी संलग्न की गई थी जिसके द्वारा प्रत्यर्थी ने यह दावा किया था कि उसने संस्थान के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया है । श्री चरण लाल साहू द्वारा किए गए आक्षेपों के संबंध में प्रत्यर्थी की ओर से भी एक उत्तर फाइल किया गया था । इसके पश्चात्, रिटर्निंग आफिसर ने तारीख 3 जुलाई, 2012 को नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा के समय इस मामले पर विचार किया था जब कि अर्जीदार के प्रतिनिधि ने प्रत्यर्थी द्वारा संस्थान की परिषद् के प्रधान को प्रस्तुत किए गए त्यागपत्र की वास्तविकता को भी प्रश्नगत किया था । रिटर्निंग आफिसर ने पक्षकारों की ओर से किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात् तारीख 3 जुलाई, 2012 के अपने आदेश द्वारा अर्जीदार के आक्षेपों तथा श्री चरण लाल साहू

द्वारा किए गए आक्षेपों को भी नामंजूर कर दिया और प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्र को स्वीकार कर लिया । तदनुसार, तारीख 3 जुलाई, 2012 को केवल अर्जीदार और प्रत्यर्थी को राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए सम्यक् रूप से नामनिर्देशित दो अभ्यर्थियों के रूप में घोषित किया गया था । राष्ट्रपतीय निर्वाचनों के लिए प्रत्यर्थी की अभ्यर्थिता के संबंध में अर्जीदार के आक्षेप के नामंजूर किए जाने के ठीक पश्चात् तारीख 9 जुलाई, 2012 को भारत के निर्वाचन आयोग को संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन एक अर्जी प्रस्तुत की गई थी जिसमें रिटर्निंग आफिसर से यह प्रार्थना की गई कि प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्रों की पुनः संवीक्षा करने का निदेश दिया जाए और अर्जीदार की सुनवाई करने के पश्चात् मामले पर नए सिरे से विनिश्चय किया जाए । निर्वाचन आयोग ने उक्त अर्जी यह मानते हुए नामंजूर कर दी कि वह निर्वाचन आयोग के समक्ष फाइल नहीं की जा सकती है क्योंकि राष्ट्रपतीय निर्वाचनों से संबंधित सभी विवादों की जांच और उनके संबंध में विनिश्चय केवल इस न्यायालय द्वारा किया जा सकता है । इसके पश्चात्, राष्ट्रपतीय निर्वाचन तारीख 19 जुलाई, 2012 को कराए गए और प्रत्यर्थी को तारीख 22 जुलाई, 2012 को भारत के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित घोषित किया गया था । अर्जीदार ने, प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्रों को विधिमान्य नामनिर्देशन पत्रों के रूप में स्वीकार करने वाले रिटर्निंग आफिसर के विनिश्चय से व्यथित होकर भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी के निर्वाचन को उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 और विशेषकर उसके नियम 13 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 71 के अधीन प्रश्नगत किया है । अर्जीदार की ओर से यह दलील दी कि भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी का निर्वाचन मुख्य रूप से इस आधार पर शून्य घोषित किए जाने योग्य है कि नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा की तारीख को भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष का पद धारण करने के कारण प्रत्यर्थी लाभ का पद धारण किए हुए था जिसके कारण वह राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए निरर्हित हो गया था । अर्जीदार की ओर से यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी उपर्युक्त संस्थान के अध्यक्ष का पद धारण करने के अलावा लोक सभा में सदन का नेता भी था जिसे एक लाभ का पद घोषित किया गया था । यह दलील दी गई कि चूंकि प्रत्यर्थी नामनिर्देशन पत्र फाइल करने की तारीख को उपर्युक्त दोनों पद धारण किए हुए था, जो कि लाभ के पद हैं, इसलिए प्रत्यर्थी संविधान के अनुच्छेद 58(2) के आधार पर राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने से निरर्हित हो गया था । अर्जीदार की ओर से आगे यह दलील दी

गई कि संविधान के अनुच्छेद 71 में यह उपबंध है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा । यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी के इस प्राख्यान में बहुत शंकाएं थी कि उसने अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने की तारीख को भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष पद तथा लोक सभा में सदन के नेता के रूप में अपने पद, दोनों, से तारीख 20 जून, 2012 को त्यागपत्र दे दिया था । इस बात पर जोर दिया गया कि जो शंका उठाई गई थी उसका निवारण पूर्णरूपेण जांच करके ही किया जा सकता था जिसमें साक्ष्य लेना और उन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करना अपेक्षित है, जिनकी परीक्षा प्रत्यर्थी करना चाहता है । तदुनसार, यह दलील दी गई कि वर्तमान अर्जी का विचारण उसी रीति में किया जाना होगा जैसे किसी ऐसे वाद का विचारण किया जाता है, जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के उपबंध लागू होते हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा परस्पर-विरोधी दलीलों पर विचार करने के पश्चात् निर्वाचन अर्जी खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संविधान में उस रीति के संबंध में उपबंध किया गया है जिसमें राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को प्रश्नगत किया जा सकता है । अनुच्छेद 71 में राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त विषयों के लिए उपबंध किया गया है । अनुच्छेद 71 के खंड (1) में यह उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा । उपखंड (3) में यह उपबंध है कि संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त किसी विषय का विनियमन संसद् विधि द्वारा कर सकेगी । इसके अलावा, राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम वर्ष 1952 में भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन से संबंधित या संसक्त कतिपय विषयों का विनियमन करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था । जैसा कि श्री साल्वे ने उपदर्शित किया है, 1952 के अधिनियम की धारा 14 और धारा 14क में उसके अधीन निर्वाचन अर्जियों का उसमें उपदर्शित रीति में विचारण करने की अधिकारिता विशेष रूप से उच्चतम न्यायालय में निहित की गई है । वास्तव में, उक्त अधिनियम का भाग 3 भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों से संबंधित विवादों के संबंध में है जिसमें

धारा 14 और धारा 14क तथा धारा 17 और धारा 18 हैं, जिनमें उच्चतम न्यायालय को या तो निर्वाचन को खारिज करने या निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने की या निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने और अर्जीदार या किसी अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित करने की शक्ति दी गई है । (पैरा 47)

उच्चतम न्यायालय ने, अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (3) को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 145 के अधीन नियम विरचित किए हैं जो कि उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 में अंतर्विष्ट हैं । आदेश 39 के नियम 13 में यह उपबंध किया गया है कि भारत के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन को चुनौती देने से संबंधित कोई अर्जी पेश किए जाने पर उसे प्रारंभिक सुनवाई करने और इस बात पर विचार करने के लिए न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष रखा जाएगा कि अर्जी आदेश 39 के नियम 20 में यथा-अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है अथवा नहीं और उस संदर्भ में ऐसी न्यायपीठ या तो अर्जी को खारिज कर सकती है या कोई ऐसा समुचित आदेश पारित कर सकती है, जो वह उपयुक्त समझे । उपर्युक्त स्कीम के अधीन ही अर्जीदार द्वारा प्रत्यर्थी के भारत के राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को चुनौती देते हुए फाइल की गई प्रस्तुत निर्वाचन अर्जी पर इस प्रश्न के संबंध में प्रारंभिक सुनवाई की गई है कि क्या वह नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है अथवा नहीं । (पैरा 48 और 49)

यह चुनौती मुख्य रूप से इस अभिकथन पर आधारित है कि नामनिर्देशन फाइल करने की तारीख को प्रत्यर्थी "लाभ का पद" अर्थात् :– (i) भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष; और (ii) लोक सभा में सदन के नेता, का पद धारण किए हुए थे । अर्जीदार की ओर से उपर्युक्त चुनौतियों के संबंध में इस बात पर जोर दिया गया था कि उक्त दो विवाद्यकों के बारे में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक था कि अर्जीदार द्वारा किए गए अभिकथनों की सच्चाई का पता लगाने के लिए निर्वाचन अर्जी की बाबत नियमित सुनवाई की जाए । यह भी निवेदन किया गया था कि इसकी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के अधीन यथा-अनुध्यात रीति में पूर्णरूपेण सुनवाई की जानी आवश्यक है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के भाग 3 में अंतर्विष्ट उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता से संबंधित उपबंधों के साथ पठित आदेश 39 से स्पष्ट होता है । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से इस बात पर

जोर दिया गया है कि नामनिर्देशन फाइल करने की तारीख को प्रत्यर्थी न तो उपर्युक्त संस्थान के अध्यक्ष का पद धारण किए हुए थे और न ही वे लोक सभा में सदन के नेता थे, क्योंकि उन्होंने दोनों पदों से अपना त्यागपत्र तारीख 20 जून, 2012 को दे दिया था । (पैरा 50 और 51)

इस संबंध में कुछ शंका है कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अध्यक्ष का पद लाभ का पद है अथवा नहीं हालांकि उसे 2006 में यथा-संशोधित संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 के उपबंधों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 102 की परिधि से अपवर्जित कर दिया गया है । इसे उन पदों की सारणी में सम्मिलित किए जाने पर, जिन्हें संसद् की सदस्यता से निरर्हित होने से व्यावृत्त किया गया है, लाभ के पद के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए । तथापि, पद को लाभ के पद के रूप में प्रवर्गीकृत करने से वह वास्तव में ऐसा पद नहीं बन जाता क्योंकि इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता था और वह पूर्णतः अवैतनिक प्रकृति का था । उक्त पद के धारक के साथ न तो कोई वेतन, न ही कोई मानदेय या कोई अन्य फायदा जुड़ा हुआ था । यह ऐसा पद नहीं था जिससे वस्तुतः कोई ऐसा लाभ प्राप्त किया जा सकता था जो उसे वास्तव में लाभ का पद बना सकता था । वर्तमान मामले में, संस्थान के अध्यक्ष के पद से इसमें इसके ऊपर उपदर्शित कोई भी सुख-सुविधा प्रदान नहीं की जाती थी और वास्तव में उक्त पद द्वारा कोई लाभ या धनीय अभिलाभ प्राप्त भी नहीं किया जा सकता था । पक्षकारों की ओर से अपनी-अपनी दलीलों के समर्थन में उद्धृत विभिन्न विनिश्चयों से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि लाभ का पद होने के लिए उस पद के साथ विभिन्न धनीय फायदे अवश्य जुड़े होने चाहिएं या वह पद धनीय फायदे पहुंचाने में समर्थ होना चाहिए जैसे शासकीय वास-सुविधा या चालक सहित कार उपलब्ध कराना, जो कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष के पद की बाबत नहीं है । (पैरा 52, 55 और 58)

संविधान के अनुच्छेद 58 के खंड (2) के स्पष्टीकरण में यथा-उल्लिखित सांविधानिक स्कीम से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि उक्त अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए कोई व्यक्ति अन्य बातों के साथ-साथ केवल इस कारण कोई लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या किसी राज्य का मंत्री है । संविधान के अनुच्छेद 102 में समरूप उपबंध अंतर्विष्ट हैं जिसके खंड (1) के स्पष्टीकरण में इसी प्रकार उपदर्शित किया गया है कि उक्त खंड के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन

लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है । इस तर्क में कि संविधान के अनुच्छेद 102 तथा अनुच्छेद 58 के उपर्युक्त उपबंध राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित किसी व्यक्ति को तब निरर्हित होने से व्यावृत्त नहीं कर सकते यदि वह लाभ का पद धारण करता है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कोई बल नहीं है कि, जैसा कि अभिलेख पर विद्यमान सामग्री से प्रकट होता है, प्रत्यर्थी राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने के समय सरकार के अधीन या अन्यथा कोई लाभ का पद धारण नहीं किए हुए था । (पैरा 57)

सदन के नेता के पद के संबंध में यह पूर्णतः स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने से पहले अपना त्यागपत्र दे दिया था । इस संविवाद का अंत कि प्रत्यर्थी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उसकी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति की सदस्यता से अभिकथित रूप से तारीख 25 जून, 2012 को त्यागपत्र दिया था, श्री प्रदीप गुप्ता द्वारा, जो कि भारत के राष्ट्रपति के निजी सचिव हैं, फाइल किए गए शपथपत्र द्वारा कर दिया गया था । श्री गुप्ता ने उक्त शपथपत्र में यह उपदर्शित किया है कि उसने केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा प्रत्यर्थी को राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए उसका नामनिर्देशन स्वीकार किए जाने पर उसे विदाई देने के लिए आयोजित की गई बैठक की तारीख अनवधानतावश 25 जून, 2012 दी थी । तथापि, सदन के नेता का पद धारण करने के कारण अनुध्यात निरर्हता, सदन में दल के नेता की हैसियत होने के अलावा, जो कि सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करना नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) के उपबंधों के संबंध में थी । बहरहाल, चूंकि प्रत्यर्थी ने अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने के पूर्व उक्त पद से त्यागपत्र दे दिया था, जिस पर सदन के अध्यक्ष द्वारा सम्यक् रूप से कार्यवाही कर दी गई थी, इसलिए अर्जीदार द्वारा भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी के निर्वाचन को उक्त आधार पर दी गई चुनौती की सुसंगतता समाप्त हो गई है । तथापि, 2006 में यथा-संशोधित संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 के उपबंधों द्वारा संस्थान के अध्यक्ष के पद को संसद् का सदस्य बनने संबंधी निरर्हता से अपवर्जित कर दिया गया था । (पैरा 56)

इस प्रक्रम पर यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि उच्चतम न्यायालय ने बार-बार यह चेतावनी दी है कि किसी ऐसे अभ्यर्थी के

निर्वाचन में, जो निर्वाचन में विजयी हुआ है, जब तक कि परिस्थितियां ऐसी अपेक्षा न करें, सामान्यतया हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । अतः, यह न्यायालय निर्वाचन अर्जी को नियमित सुनवाई के लिए रखने के लिए तैयार नहीं है और उसे उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के नियम 13 के अधीन खारिज किया जाता है । (पैरा 61 और 62)

प्रारंभिक सुनवाई का उपबंध किए जाने के संबंध में उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 में नए नियम 13 का अंतःस्थापन, आदेश 23 के नियम 6 के उपबंधों की विद्यमानता और आदेश 23 के नियम 6 में उल्लिखित दोनों आधारों पर किसी वाद को नामंजूर करने और वाद (जिसके अंतर्गत निर्वाचन अर्जी भी है) को खारिज करने की शक्ति की उपलभ्यता के होते हुए भी किया गया था । अतः आदेश 39, नियम 13 के अधीन प्रारंभिक सुनवाई में न्यायालय से किसी विशिष्ट कानूनी अधिनियमिति को ध्यान में रखते हुए निर्वाचन अर्जी में किए अभिवचनों या उसकी संधार्यता के प्रश्न पर केवल वाद हेतुक के प्रकटन या अप्रकटन के तथ्य पर विचार करने के अतिरिक्त कुछ और बातों पर भी विचार करने की अपेक्षा होगी । ऐसी अतिरिक्त जांच, जिसमें स्पष्ट रूप से ऐसे विषयों को अपवर्जित किया जाना चाहिए, जो नियम 20 के अधीन नियमित सुनवाई के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं, की अपेक्षा आदेश 39 के नियम 13 के अधीन प्रारंभिक सुनवाई में की जाएगी । ऐसी जांच के दौरान न्यायालय को अपना यह समाधान कर लेना चाहिए कि यद्यपि निर्वाचन अर्जी में ऐसे किसी स्पष्ट वादहेतुक का प्रकटन किया गया है और विचारणीय विवाद्यक(कों) को उठाया गया है, तथापि, उठाए गए विवाद्यकों का विचारण वहां तक आवश्यक या न्यायोचित नहीं होगा, जहां तक यदि उन संपूर्ण तथ्यों पर, जिनका अर्जीदार ने अवलंब लिया है, साबित मान लिया जाए, तो भी निर्वाचन के परिणाम में कोई हस्तक्षेप करने की गुंजाइश नहीं होगी । (पैरा 78)

संसद् में मान्यताप्राप्त दलों तथा समूहों के नेता तथा मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) अधिनियम, 1998 और उसके अधीन विरचित नियमों के उपबंधों के अधीन सदन के नेता या सदन में विधायिका दल के नेता के लिए, यदि वह संघ का कोई मंत्री है (वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी संघ मंत्रिमंडल का सदस्य था) तो ऐसे किसी पद के धारक को संदेय सम्बलम् और परिलब्धियों के अतिरिक्त, कोई पारिश्रमिक अनुध्यात नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, इन दोनों पदों में से कोई भी पद अनुच्छेद 58(2) के अधीन यथापेक्षित भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन

अथवा किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन नहीं है जिससे किसी ऐसे पद के धारक के प्रति उसके अधीन अनुध्यात निरर्हता उपगत हो सके । प्रश्नगत दोनों ही पद लोक सभा से संबंधित पद हैं । उसका कोई पदधारी, यथास्थिति, या तो निर्वाचित हुआ होना चाहिए या सदन में उसकी सदस्यता या मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में उसकी स्थिति के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया होना चाहिए । अतः, जहां तक पूर्वोक्त पदों का संबंध है, निर्वाचन अर्जी में, नियमों के आदेश 39 के नियम 20 के अधीन विस्तृत सुनवाई के लिए किसी विचारणीय विवाद्यक को प्रकट नहीं किया है । (पैरा 79)

जहां तक अनुच्छेद 102(1)(क) का संबंध है, यद्यपि लाभ का पद धारण करना संसद् के प्रत्येक सदन के सदस्य के रूप में निर्वाचन के लिए या उसका सदस्य होने के लिए निरर्हता है तो भी ऐसी किसी निरर्हता का संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा अभिलोपन किया जा सकता है । अनुच्छेद 58(2) के अधीन, यद्यपि ऐसी निरर्हता (लाभ का कोई पद धारण करने के आधार पर) किसी राष्ट्रपतीय अभ्यर्थी के प्रति उपगत होती है तो भी ऐसी किसी निरर्हता को दूर करने हेतु संसद् को कोई शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 58 और अनुच्छेद 102, दोनों के स्पष्टीकरणों में ऐसे उपबंध अंतर्विष्ट हैं, जिनके आधार पर कतिपय पदों को लाभ का पद नहीं समझा जाएगा । संविधान के दोनों उपबंधों के बीच समानताएं और अंतर इतने सुस्पष्ट हैं कि उनकी अनदेखी या उपेक्षा नहीं की जा सकती है । ऐसी किसी स्थिति में, जहां अनुच्छेद 102(1)(क) संसद् को, लाभ का कोई पद धारण करने के आधार पर संसद् का सदस्य होने के लिए उपगत निरर्हता को दूर करने हेतु कोई विधि अधिनियमित करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से सशक्त करता है, वहीं अनुच्छेद 58 में ऐसे किसी उपबंध के अभाव में किसी समेकित सांविधानिक स्कीम को समझने के लिए अनुच्छेद 58 का अनुच्छेद 102 के साथ परिशीलन संभव नहीं होगा । इस मत को ध्यान में रखते हुए कि संविधान की भाषा को उसके साधारण और सहज अभिप्राय के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए, जिससे उसका उस रूप में अर्थान्वयन किया जा सके जिससे उसका सही विधायी आशय निकलता हो, अनुच्छेद 58 को अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 से स्वतंत्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और दोनों सांविधानिक उपबंधों के उद्देश्य को एक दूसरे से पृथक् रूप से समझना होगा । (पैरा 83)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 9 एस. सी. सी. 648 : **कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सोसायटी** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	37,45
[2006]	(2006) 5 एस. सी. सी. 266 : **जया बच्चन** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	17,27,54
[2002]	(2002) 2 एस. सी. सी. 704 : **एम. वी. राजशेखरन और अन्य** बनाम **वटल नागराज और अन्य** ;	18,44,140,144
[2001]	(2001) 7 एस. सी. सी. 425 : **शिबू सोरेन** बनाम **दयानन्द सहाय और अन्य** ;	16,27,28,53,150
[2001]	(2001) 2 एस. सी. सी. 19 : **प्रद्युत बोरदोलोई** बनाम **स्वप्न राय** ;	40
[1993]	(1993) 2 एस. सी. सी. 725 : **मोती राम** बनाम **परम देव** ;	31
[1987]	(1987) सप्ली. एस. सी. सी. 692 : **मिथिलेश कुमार** बनाम **आर. वेंकटरमण और अन्य** ;	24
[1985]	(1985) 1 एस. सी. सी. 151 : **अशोक कुमार भट्टाचार्य** बनाम **अजय विश्वास और अन्य** ;	41
[1983]	(1983) 4 एस. सी. सी. 582 : **बी. एस. मिन्हास** बनाम **भारतीय सांख्यिकी संस्थान और अन्य** ;	134
[1983]	(1983) 4 एस. सी. सी. 36 : **मांगे राम** बनाम **ब्रज मोहन और अन्य** ;	28
[1978]	(1978) 2 एस. सी. सी. 500 : **चरन लाल साहू** बनाम **नीलम संजीवा रेड्डी** ;	22

[1978]	(1978) 2 एस. सी. सी. 301 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **गोपाल चन्द्र मिश्रा और अन्य** ;	30
[1977]	(1977) 1 एस. सी. सी. 70 : **मधुकर जी. ई. पंकाकर** बनाम **जसवंत छबीलदास रजनी** ;	29
[1975]	(1975) सप्ली. एस. सी. सी. 1 : **इंदिरा नेहरू गांधी** बनाम **राज नारायण** ;	38
[1975]	(1975) 1 एस. सी. सी. 252 : **कारभारी भीमाजी रोहमारे** बनाम **शंकर राव गेनुजी कोल्हे और अन्य** ;	39
[1971]	(1971) 3 एस. सी. सी. 870 : **शिवमूर्त्ति स्वामी इनामदार** बनाम **अगादी संगन्ना आन्दनप्पा** ;	149
[1969]	(1969) 3 एस. सी. सी. 268 : **कांता कथूरिया** बनाम **मानक चन्द सुराना** ;	38
[1968]	[1968] 2 एस. सी. आर. 133 = ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 904 : **बाबूराव पटेल और अन्य** बनाम **डॉ. जाकिर हुसैन और अन्य** ;	83,129
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 653 : **रावन्ना सुबन्ना** बनाम **जी. एस. कगीरप्पा** ।	28,29,149

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2012 की निर्वाचन अर्जी सं. 1.

भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 71 के अधीन निर्वाचन अर्जी ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री गुलाम ई. वाहनवती, महान्यायवादी, राम जेठमलानी, सत्य पाल जैन, हरीश एन. साल्वे, प्रवीन एच. पारेख, ज्येष्ठ अधिवक्ता, एस. एस. शमशेरी, धीरज जैन, पी. वी. योगेश्वरन्, (श्रीमती) लता कृष्णमूर्ति, (सुश्री) पी. आर. माला,

सुभाषिणी आर. सोरेन, प्रणव दीश, करन कालिया, आशीष दीक्षित, वी. एम. विष्णु, भारत सूद, भक्ती वर्धन सिंह, देवदत्त कामत, रोहित शर्मा, अनुपम एन. प्रसाद, निज़ाम पाशा, आनन्द कानन, समीर पारेख, ई. आर. कुमार, (सुश्री) सोनाली बसु पारेख, रजत नायर, विशाल प्रसाद, उत्सव त्रिवेदी, अभिषेक विनोद देशमुख (मैसर्स पारेख एंड कंपनी की ओर से) और (सुश्री) मीनाक्षी अरोड़ा

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर ने दिया ।

मु. न्या. कबीर – प्रस्तुत मामले में अर्जीदार तारीख 19 जुलाई, 2012 को हुए राष्ट्रपतीय निर्वाचनों में एक अभ्यर्थी था, जिसका परिणाम तारीख 22 जुलाई, 2012 को घोषित किया गया था । अर्जीदार और प्रत्यर्थी केवल दो ही सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट अभ्यर्थी थे । प्रत्यर्थी ने जो मत प्राप्त किए थे उनका मूल्य 7,13,763 था और उसे भारत के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित घोषित किया गया था । दूसरी ओर, अर्जीदार ने जो मत प्राप्त किए थे उनका मूल्य 3,15,987 था ।

2. अर्जीदार ने भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी के निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती दी है कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 58 के उपबंधों के आधार पर राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र नहीं था, जिसे इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"**58. राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए अर्हताएं** – (1) कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह –

(क) भारत का नागरिक है,

(ख) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका है, और

(ग) लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित है ।

(2) कोई व्यक्ति, जो भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है, राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण – इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण कोई लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल है अथवा संघ का या किसी राज्य का मंत्री है ।"

3. अर्जीदार के अनुसार, प्रत्यर्थी राष्ट्रपतीय निर्वाचनों के लिए अभ्यर्थी के रूप में नामनिर्देशन पत्र फाइल करने के समय भारतीय सांख्यिकी संस्थान परिषद्, कलकत्ता (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संस्थान" कहा गया है) के अध्यक्ष का पद धारण किए हुए था, जो कि उसके अनुसार एक लाभ का पद था । ऐसा प्रतीत होता है कि तारीख 2 जुलाई, 2012 को नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा के समय अर्जीदार के प्राधिकृत प्रतिनिधि द्वारा, जिसने यह दलील दी थी कि प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्र खारिज किए जाने योग्य हैं, रिटर्निंग आफिसर के समक्ष इस आशय का एक आक्षेप उठाया गया था । उक्त दलील के उत्तर में, प्रत्यर्थी के प्रतिनिधि ने अर्जीदार द्वारा किए गए आक्षेपों का उत्तर फाइल करने के लिए दो दिन के समय की ईप्सा की थी । इसके पश्चात्, अर्जीदार द्वारा किए गए आक्षेपों के संबंध में तारीख 3 जुलाई, 2012 को प्रत्यर्थी की ओर से रिटर्निंग आफिसर के समक्ष एक लिखित उत्तर फाइल किया गया था, जिसके साथ तारीख 20 जून, 2012 के त्यागपत्र की प्रति भी संलग्न की गई थी जिसके द्वारा प्रत्यर्थी ने यह दावा किया था कि उसने संस्थान के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया है । श्री चरण लाल साहू द्वारा किए गए आक्षेपों के संबंध में प्रत्यर्थी की ओर से भी एक उत्तर फाइल किया गया था । इसके पश्चात्, रिटर्निंग आफिसर ने तारीख 3 जुलाई, 2012 को नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा के समय इस मामले पर विचार किया था जब कि अर्जीदार के प्रतिनिधि ने प्रत्यर्थी द्वारा संस्थान की परिषद् के प्रधान प्रोफेसर एम. जी. के. मेनन को प्रस्तुत किए गए त्यागपत्र की वास्तविकता को भी प्रश्नगत किया था ।

4. रिटर्निंग आफिसर ने पक्षकारों की ओर से किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात् तारीख 3 जुलाई, 2012 के अपने आदेश द्वारा अर्जीदार के आक्षेपों तथा श्री चरण लाल साहू द्वारा किए गए आक्षेपों को भी नामंजूर कर दिया और प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्र को स्वीकार कर लिया । तदनुसार, तारीख 3 जुलाई, 2012 को केवल अर्जीदार और प्रत्यर्थी को राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए सम्यक् रूप से नामनिर्देशित दो अभ्यर्थियों के रूप में घोषित किया गया था ।

5. राष्ट्रपतीय निर्वाचनों के लिए प्रत्यर्थी की अभ्यर्थिता के संबंध में

अर्जीदार के आक्षेप के नामंजूर किए जाने के ठीक पश्चात् तारीख 9 जुलाई, 2012 को भारत के निर्वाचन आयोग को संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन एक अर्जी प्रस्तुत की गई थी जिसमें रिटर्निंग आफिसर से यह प्रार्थना की गई कि प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्रों की पुनः संवीक्षा करने का निदेश दिया जाए और अर्जीदार की सुनवाई करने के पश्चात् मामले पर नए सिरे से विनिश्चय किया जाए । निर्वाचन आयोग ने उक्त अर्जी यह मानते हुए नामंजूर कर दी कि वह निर्वाचन आयोग के समक्ष फाइल नहीं की जा सकती है क्योंकि राष्ट्रपतीय निर्वाचनों से संबंधित सभी विवादों की जांच और उनके संबंध में विनिश्चय केवल इस न्यायालय द्वारा किया जा सकता है । इसके पश्चात्, जैसा कि इसमें इसके ऊपर उपदर्शित किया गया है, राष्ट्रपतीय निर्वाचन तारीख 19 जुलाई, 2012 को कराए गए और प्रत्यर्थी को तारीख 22 जुलाई, 2012 को भारत के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित घोषित किया गया था ।

6. अर्जीदार ने, प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्रों को विधिमान्य नामनिर्देशन पत्रों के रूप में स्वीकार करने वाले रिटर्निंग आफिसर के विनिश्चय से व्यथित होकर भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी के निर्वाचन को उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 और विशेषकर उसके नियम 13 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 71 के अधीन प्रश्नगत किया है । उक्त नियम, जो कि इस अर्जी का विनिश्चय करने के लिए सुसंगत है, निम्नलिखित रूप में है :–

> * "13. कोई अर्जी पेश किए जाने पर उसे प्रारंभिक सुनवाई के लिए और अर्जी की तामील संबंधी आदेशों के लिए और उसके ऐसे विज्ञापन के लिए, जो न्यायालय उचित समझे तथा अर्जी की सुनवाई के लिए समय नियत करने के लिए न्यायालय के पांच न्यायाधीशों से मिलकर बनी एक न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा । प्रारंभिक

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है : –

> "13. hearing and orders for service of the petition and advertisement thereof as the Court may think proper and also appoint a time for hearing of the petition. Upon preliminary hearing, the Court, if satisfied, that the petition does not deserve regular hearing as contemplated in Rule 20 of this

सुनवाई किए जाने पर, यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि वह अर्जी इस आदेश के नियम 20 में यथा-अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य नहीं है तो वह उस अर्जी को खारिज कर सकेगा या ऐसा कोई समुचित आदेश पारित कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

7. उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के नियम 13 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, जो कि राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 के भाग 3 के अधीन निर्वाचन अर्जियों के संबंध में है, अर्जीदार द्वारा फाइल की गई निर्वाचन अर्जी इस प्रारंभिक प्रश्न पर सुनवाई के लिए सूचीबद्ध की गई थी कि वह अर्जी आदेश 39 के नियम 20 द्वारा यथा-अनुध्यात किसी सुनवाई के योग्य है अथवा नहीं । नियम 20 में यह उपबंधित है कि :-

*"20. किसी निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली प्रत्येक अर्जी न्यायालय के कम से कम पांच न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी और उसके द्वारा उसकी सुनवाई और उसका निपटारा किया जाएगा ।"

8. अर्जीदार की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री राम जेठमलानी ने यह दलील दी कि भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी का निर्वाचन मुख्य रूप से इस आधार पर शून्य घोषित किए जाने योग्य है कि नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा की तारीख को भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष का पद धारण करने के कारण प्रत्यर्थी लाभ का पद धारण किए हुए था जिसके कारण वह राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए निरर्हित हो गया था ।

9. श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी उपर्युक्त संस्थान के

Order may dismiss the petition or pass any appropriate order as the Court may deem fit." (Emphesis supplied)

*"20. Every petition calling in question an election shall be posted before and be heard and disposed of by a Bench of the Court consisting of not less than five Judges."

अध्यक्ष का पद धारण करने के अलावा लोक सभा में सदन का नेता भी था जिसे एक लाभ का पद घोषित किया गया था । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि चूंकि प्रत्यर्थी नामनिर्देशन पत्र फाइल करने की तारीख को उपर्युक्त दोनों पद धारण किए हुए था, जो कि लाभ के पद हैं, इसलिए प्रत्यर्थी संविधान के अनुच्छेद 58(2) के आधार पर राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने से निरर्हित हो गया था ।

10. श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 71 में यह उपबंध है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी के इस प्राख्यान में बहुत शंकाएं थी कि उसने अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने की तारीख को भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष पद तथा लोक सभा में सदन के नेता के रूप में अपने पद, दोनों, से तारीख 20 जून, 2012 को त्यागपत्र दे दिया था । श्री जेठमलानी ने इस बात पर जोर दिया कि जो शंका उठाई गई थी उसका निवारण पूर्णरूपेण जांच करके ही किया जा सकता था जिसमें साक्ष्य लेना और उन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करना अपेक्षित है, जिनकी परीक्षा प्रत्यर्थी करना चाहता है । तदनुसार, श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि वर्तमान अर्जी का विचारण उसी रीति में किया जाना होगा जैसे किसी ऐसे वाद का विचारण किया जाता है, जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के उपबंध लागू होते हैं, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

> "141. **प्रकीर्ण कार्यवाहियां** – उस प्रक्रिया का, जो वादों के विषय में इस संहिता में उपबंधित है, सिविल अधिकारिता वाले किसी भी न्यायालय में की सभी कार्यवाहियों में वहां तक अनुसरण किया जाएगा जहां तक वह लागू की जा सके ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस धारा में "कार्यवाही" शब्द के अंतर्गत आदेश 9 के अधीन कार्यवाही है, किन्तु इसके अंतर्गत संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाही नहीं है ।"

इसके अलावा, विद्वान् काउन्सेल ने उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के नियम 34 के प्रति भी निर्देश किया, जिसमें निम्न प्रकार उपबंधित है :–

* "**आदेश 39, नियम 34** – इस आदेश या न्यायालय के किसी विशेष आदेश के उपबंधों या निदेशों के अधीन रहते हुए किसी निर्वाचन अर्जी में की प्रक्रिया में यथासंभव निकटतम रूप में न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में उसके समक्ष की कार्यवाहियों में की प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा ।"

11. श्री जेठमलानी ने यह इंगित किया कि उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 22 में उपबंधित उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता में कोई वाद संस्थित करने और उसके विचारण के लिए संपूर्ण प्रक्रिया उपवर्णित की गई है, जिसमें सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा शासित किसी वाद की बाबत सभी भिन्न-भिन्न प्रक्रमों के लिए उपबंध किया गया है । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि निर्वाचन अर्जियों के विचारण की प्रक्रिया को उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के समरूप बनाना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि मामले का विचारण एक वाद के रूप में किया जाना चाहिए यदि आदेश 39 के नियम 13 के अधीन पांच न्यायाधीशों वाले न्यायालय का प्रारंभिक जांच के समय यह समाधान हो गया था कि मामला उक्त आदेश के नियम 20 में यथा-अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है ।

12. श्री जेठमलानी ने तुलना की दृष्टि से लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 87 के प्रति निर्देश किया, जिसमें निर्वाचन अर्जियों के विचारण के लिए प्रक्रिया अधिकथित की गई है और उसमें यह उपबंध किया गया है कि हर निर्वाचन अर्जी उच्च न्यायालय द्वारा यथाशक्य निकटतम उस प्रक्रिया के अनुसार विचारित की जाएगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन वादों के विचारण को लागू है । श्री जेठमलानी ने इस बात पर जोर दिया कि निर्वाचन विवादों से संबंधित मामलों में विधायिका का आशय यह था कि उनका विचारण सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है : –

"**Order XXXIX, Rule 34** – Subject to the provisions of this Order or any special order or direction of the Court, the procedure of an Election Petition shall follow as nearly as may be the procedure in proceedings before the Court in exercise of its Original Jurisdiction."

141 में प्रतिपादित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए नियमित वादों के रूप में किया जाए ।

13. इसके पश्चात्, श्री जेठमलानी ने हमारा ध्यान संविधान के अनुच्छेद 102 और विशेषकर उसके खंड 1(1)(क) के प्रति आकृष्ट किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, निम्न प्रकार उपबंध किया गया है :–

> "102. (1) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा –
>
> (क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है ;
>
> (ख) ....
>
> (ग) ....
>
> (घ) ....
>
> (ङ) ....
>
> **स्पष्टीकरण** – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल उस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है ।"

14. श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 58(2) में उपर्युक्त भाषा के समरूप भाषा सम्मिलित की गई थी और उसमें यह उपबंध है कि कोई व्यक्ति, जो भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है, राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र नहीं होगा । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि जैसा कि अनुच्छेद 102 के स्पष्टीकरण में उपबंध है, अनुच्छेद 58 के खंड (2) के स्पष्टीकरण में भी यह उपदर्शित है कि कोई व्यक्ति केवल इस कारण कोई लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल है अथवा संघ का या किसी राज्य का मंत्री है । श्री जेठमलानी ने इस बात

पर जोर दिया कि अनुच्छेद 102 के अधीन राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित ऐसे किसी व्यक्ति को व्यावृत्त नहीं किया जा सकता है यदि वह लाभ का पद धारण करता है ।

15. श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किए गए शपथपत्र के उपाबंधों से यह अत्यंत शंकास्पद था कि क्या प्रत्यर्थी ने, जैसी कि उसने दलील दी है, तारीख 20 जून, 2012 को संस्थान के अध्यक्ष के पद से या कांग्रेस पार्टी की सदस्यता से, जिसमें उसकी कार्यकारिणी समिति भी है और लोक सभा में कांग्रेस पार्टी के नेता के पद से उसी तारीख को त्यागपत्र दे दिया था । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि संस्थान के प्रधान प्रोफेसर एम. जी. के. मेनन को संबोधित पत्र की प्रति से यह अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता था कि प्रोफेसर मेनन द्वारा किया गया पृष्ठांकन प्रत्यर्थी का त्यागपत्र मंजूर किए जाने की कोटि में आता है या पत्र प्राप्त किए जाने की ही कोटि में आता है । विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 71 के अर्थान्तर्गत "शंका" का एक और मामला है जिसमें यह अपेक्षित है कि निर्वाचन अर्जी का विचारण ऐसे वाद के रूप में किया जाए जिसके लिए साक्ष्य लेकर और साक्षियों की प्रतिपरीक्षा अनुज्ञात करके विस्तृत सुनवाई की जानी अपेक्षित है ।

16. यह भी दलील दी गई थी कि "लाभ का पद" अभिव्यक्ति को आज तक न तो राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 के अधीन और न ही स्वतंत्रता-पूर्व के किसी अन्य कानून के अधीन निश्चित रूप से स्पष्ट किया गया है और उसका समाधान इस न्यायालय द्वारा किया जाना अपेक्षित है । इस संबंध में, श्री जेठमलानी ने **शिबू सोरेन** बनाम **दयानन्द सहाय और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें उपर्युक्त अभिव्यक्ति पर विचार किया गया था और इस न्यायालय ने अनुच्छेद 102(1)(क) और अनुच्छेद 191(1)(क) के उपबंधों का निर्वचन करते हुए इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसा निर्वचन उक्त अनुच्छेदों के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यथार्थवादी होना चाहिए । यह मत व्यक्त किया गया था कि "लाभ" अभिव्यक्ति से "प्रतिकर" से भिन्न किसी धनीय अभिलाभ का भाव द्योतित होता है । यह

[1] (2001) 7 एस. सी. सी. 425.

अवधारित करने के लिए कि वह पद लाभ का पद है अथवा नहीं, न तो संदत्त रकम की मात्रा और न ही वह नाम जिसके अधीन संदाय किया जाता है, सदैव तात्विक हो सकता है । इस न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि मात्र "मानदेय" शब्द का प्रयोग करने से उस संदाय को लाभ की संकल्पना से परे नहीं लाया जा सकता है यदि प्राप्तिकर्ता को कुछ धनीय अभिलाभ होता है । उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिकरात्मक भत्तों की प्रकृति के दैनिक भत्तों के अतिरिक्त किसी मानदेय का संदाय, राज्य के व्यय पर किराया-मुक्त वास-सुविधा और चालक सहित कार सुविधा पारिश्रमिक की प्रकृति के थे और वह धनीय अभिलाभ का एक स्रोत है और इसलिए उससे लाभ गठित होता है । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि उक्त मामले में ऐसी मताभिव्यक्ति के आधार पर ही निर्वाचन अर्जी मंजूर की गई थी ।

17. श्री जेठमलानी ने **जया बच्चन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जिसमें "मानदेय" अभिव्यक्ति का प्रयोग करने और पद के धारक की वित्तीय हैसियत या उस पद से लाभ कमाने में धारक के हित से संबंधित उसके प्रभाव के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 102 और अन्य उपबंधों के अर्थान्तर्गत "लाभ का पद" वाक्यांश निर्वचन के लिए उद्‌भूत हुआ । यह मत व्यक्त किया गया था कि जो कुछ सुसंगत था वह यह था कि क्या उस पद द्वारा मूल खर्च/वास्तविक व्ययों की प्रतिपूर्ति के अलावा कोई लाभ या धनीय अभिलाभ कमाया जा सकता था और न कि यह सुसंगत था कि क्या व्यक्ति ने वास्तव में धनीय अभिलाभ प्राप्त किया था या उन उपलब्धियों को नहीं निकाला था जिनका वह हकदार था । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने, जिसने मामले की सुनवाई की थी, यह अभिनिर्धारित किया कि लाभ का पद वह पद है जिससे धनीय अभिलाभ के फायदे प्राप्त किए जा सकते हैं और केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के अधीन ऐसा पद धारण करना जिससे कुछ वेतन, संबलम, उपलब्धि, पारिश्रमिक या गैर-प्रतिकरात्मक भत्ता संलग्न है, "लाभ का कोई पद धारण करना" है । तथापि, इस प्रश्न का निर्वचन यथार्थवादी रीति में किया जाना है कि कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण करता है अथवा नहीं और संदाय की प्रकृति को सार का न कि प्रकार का विषय समझा जाना चाहिए । माननीय न्यायाधीशों ने आगे यह मत व्यक्त किया कि इस प्रश्न का विनिश्चय करते समय कि

---

[1] (2006) 5 एस. सी. सी. 266.

कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण किए हुए है अथवा नहीं, जो कुछ सुसंगत है वह यह है कि क्या उस पद द्वारा कोई लाभ या धनीय अभिलाभ प्राप्त किया जा सकता है न कि यह कि उस व्यक्ति ने उससे कोई धनीय अभिलाभ वास्तव में प्राप्त किया था अथवा नहीं ।

18. इसी संबंध में, **एम. वी. राजशेखरन और अन्य** बनाम **वटल नागराज और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया गया था जिसमें "लाभ का पद" अभिव्यक्ति विचारार्थ उद्‌भूत हुई थी ।

19. श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए निर्वाचन अर्जी उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के नियम 20 में यथा-अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है ।

20. प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री हरीश साल्वे ने यह दलील दी कि भारत के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1952 का अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों और विशेषकर उसके भाग 3 के अधीन विनियमित होता है, जो कि निर्वाचन संबंधी विवादों के बारे में है । श्री साल्वे ने यह इंगित किया कि अधिनियम की धारा 14 और 14क में 1952 के अधिनियम के अधीन निर्वाचन अर्जियों का उक्त धाराओं में विहित रीति में विचारण करने की अधिकारिता विनिर्दिष्ट रूप से उच्चतम न्यायालय में निहित की गई है । तदनुसार, राष्ट्रपतीय निर्वाचन को दी जाने वाली चुनौती में उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के उपबंधों का अनुपालन करना होगा जो 1952 के अधिनियम के भाग 3 के अधीन निर्वाचन अर्जियों के संबंध में है । अतः, उच्चतम न्यायालय नियमों के आदेश 39 का नियम 13 लागू हो जाता है और इसमें यह व्यादिष्ट है कि निर्वाचन अर्जी पेश किए जाने पर उसे न्यायालय के पांच न्यायाधीशों वाली न्यायपीठ के समक्ष प्रारंभिक सुनवाई के लिए उसका यह समाधान करने के लिए प्रस्तुत किया जाना होता है कि वह अर्जी नियम 20 में यथा-अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है । निर्देश की दृष्टि से, 1952 के अधिनियम की धारा 14 और 14क इसमें इसके नीचे उद्धृत की जाती है :–

"14.(1) कोई भी निर्वाचन उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्राधिकरण

---

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 704.

को पेश की गई निर्वाचन अर्जी द्वारा ही प्रश्नगत किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

(2) उच्चतम न्यायालय निर्वाचन अर्जी का विचारण करने की अधिकारिता रखने वाला प्राधिकरण होगा ।

(3) हर निर्वाचन अर्जी ऐसे प्राधिकरण को उस भाग के उपबंधों और उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार पेश की जाएगी ।

14क.(1) निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी धारा 18 की उपधारा (1) में और धारा 19 में विनिर्दिष्ट आधारों में से एक या अधिक आधारों पर ऐसे निर्वाचन के किसी अभ्यर्थी द्वारा, या –

(क) राष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, बीस या अधिक निर्वाचकों द्वारा संयुक्त अर्जीदारों के रूप में,

(ख) उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, दस या अधिक निर्वाचकों द्वारा संयुक्त अर्जीदारों के रूप में,

उच्चतम न्यायालय में पेश की जा सकेगी ।

(2) ऐसी कोई अर्जी उस घोषणा के, जिसमें धारा 12 के अधीन निर्वाचन में निर्वाचित अभ्यर्थी का नाम हो, प्रकाशन की तारीख के पश्चात् किसी भी समय पेश की जा सकेगी किन्तु ऐसे प्रकाशन की तारीख से तीस दिनों के पश्चात् पेश नहीं की जा सकेगी ।"

21. श्री साल्वे ने यह दलील दी कि संबंधित अभ्यर्थियों के नामनिर्देशन पत्रों की रिटर्निंग आफिसर द्वारा 1952 के अधिनियम की धारा 5क के उपबंधों के अनुसार संवीक्षा की गई थी । श्री साल्वे ने धारा 5ङ की उपधारा (3) के प्रति निर्देश करते हुए यह दलील दी कि उपधारा (3) में उपदर्शित सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् रिटर्निंग आफिसर ने प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्रों को विधिमान्य नामनिर्देशन पत्रों के रूप में स्वीकार किया था जिसके पश्चात् प्रत्यर्थी को निर्वाचन लड़ने का अधिकार प्राप्त हो गया था । श्री साल्वे ने यह दलील दी कि 1952 के अधिनियम की धारा 14 संविधान के अनुच्छेद 71 के खंड (3) के अधीन अधिनियमित की गई थी जिसमें यह उपबंध है कि संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त किसी विषय का विनियमन संसद् विधि द्वारा कर सकेगी ।

22. श्री साल्वे ने यह दलील दी कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को संसद् और अन्य राज्य विधान मंडलों के सदस्यों के निर्वाचन की तुलना में भिन्न स्तर का माना गया है । जबकि अनुच्छेद 102 (संसद् के) सदन के सदस्यों के निर्वाचन के संबंध में है, अनुच्छेद 58 भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में है जिसकी बाबत सर्वथा इस संबंध में अधिकथित विधि के अनुसार कार्यवाही की जानी होती है । श्री साल्वे ने अपनी पूर्वोक्त दलील के समर्थन में **चरन लाल साहू** बनाम **नीलम संजीवा रेड्डी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 71(1) और उसके अनुच्छेद 58 के बीच अभिकथित विरोधाभास पर विचार किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 58 में राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए अभ्यर्थी की पात्रता के संबंध में मात्र अर्हता के लिए उपबंध किया गया है और उसका ऐसे अभ्यर्थी के नामनिर्देशन से कोई सरोकार नहीं है जिसमें 10 प्रस्तावकों और 10 समर्थनकर्ताओं की अपेक्षा की गई है । 1952 के अधिनियम की धारा 5ख और 5ग के उपबंधों पर भी विचार किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वे संविधान के अनुच्छेद 14 के परस्पर-विरोध में नहीं हैं । संविधान के अनुच्छेद 71(3) को भी ऐसी विधि समझा गया था जिसके द्वारा संसद् राष्ट्रपतीय निर्वाचनों से संसक्त विषयों को, जिसमें ऐसे किसी निर्वाचन से उद्भूत होने वाले निर्वाचन विवादों से संबंधित विषय भी हैं, विनियमित कर सकेगी । न्यायपीठ के माननीय न्यायाधीशों ने अपने पूर्ववर्ती निर्णयों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि न तो संविधान के अनुच्छेद 71(3) और न ही 1952 की धारा 5ख या धारा 5ग के उपबंधों को दी गई चुनौती में कोई बल है ।

23. अर्जीदार, सी. एल. साहू ने भारत के राष्ट्रपति के रूप में श्री ज्ञानी जैल सिंह के निर्वाचन को भी चुनौती दी थी और उस चुनौती का इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए खंडन कर दिया गया था कि अर्जीदार को वह अर्जी फाइल करने का कोई अधिकार नहीं था ।

24. श्री साल्वे ने अंततः **मिथिलेश कुमार** बनाम **आर. वेंकटरमण और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश

[1] (1978) 2 एस. सी. सी. 500.
[2] (1987) सप्ली. एस. सी. सी. 692.

किया जिसमें समरूप प्रश्न उठाए जाने पर इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने श्री नीलम संजीवा रेड्डी और श्री ज्ञानी जैल सिंह के भारत के पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों के रूप में हुए निर्वाचन को दी गई चुनौती में अपनाए गए अपने पूर्ववर्ती मतों को दोहराया था ।

25. इसके बाद, श्री साल्वे ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि संविधान के अनुच्छेद 145 के अधीन विरचित उच्चतम न्यायालय नियमों के आदेश 39 के उपबंध 1952 के अधिनियम की धारा 14 के अनुसार इस प्रकार विरचित किए गए थे इसलिए राष्ट्रपति के निर्वाचन को चुनौती देने से संबंधित किसी विवाद को विनिश्चित करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के उपबंधों को महत्व नहीं दिया जा सकता था ।

26. श्री साल्वे ने यह दलील दी कि उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 का नियम 13 तारीख 9 दिसम्बर, 1997 को प्रतिस्थापित हो गया था और प्रतिस्थापित उपबंध तारीख 20 दिसम्बर, 1997 को प्रभावी हुआ । मूल नियम में, जो प्रतिस्थापित हो गया था, यह सिद्ध करने के लिए प्रारंभिक सुनवाई करने का कोई उपबंध नहीं था कि निर्वाचन अर्जी नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है अथवा नहीं । तथापि, लगभग सभी निर्वाचित राष्ट्रपतियों के निर्वाचनों को बार-बार और तुच्छ आधारों पर चुनौती दिए जाने के कारण ऐसा संशोधन करने की आवश्यकता महसूस हुई थी जिससे कि इस बात का आरंभ में ही मूल्यांकन किया जा सके कि राष्ट्रपतीय निर्वाचन को चुनौती देने वाली ऐसी निर्वाचन अर्जी नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है अथवा नहीं ।

27. इसके बाद, श्री साल्वे ने यह दलील दी कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष का पद लाभ का पद नहीं था क्योंकि वह पद अवैतनिक था और उक्त पद के साथ कोई वेतन या अन्य कोई फायदा नहीं जुड़ा हुआ था । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि यदि इस निर्वचन को, जो श्री राम जेठमलानी ने देने की ईप्सा की है, स्वीकार कर भी लिया जाए कि हो सकता है उस पद से कोई प्रत्यक्ष फायदा प्राप्त न होता हो किन्तु उससे ऐसे अप्रत्यक्ष फायदे हो सकते हैं जो उसे लाभ का पद बनाते हों, तो भी उक्त पद के लिए न तो कोई मानदेय प्रदान किया जाता है और न ही उस पद से कोई ऐसा फायदा प्राप्त हो सकता है जो कि उसे लाभ का पद बना सके । श्री साल्वे ने यह दलील दी कि श्री राम जेठमलानी द्वारा **शिबू सोरेन** (उपर्युक्त) और **जया बच्चन** (उपर्युक्त) वाले मामलों में उद्धृत विनिश्चयों में प्रतिपादित विधि मान्य विधि थी और वास्तव

में वह पद, जो प्रत्यर्थी संस्थान के अध्यक्ष के रूप में धारण किए हुए था, लाभ का ऐसा पद नहीं था जो उसे भारत के राष्ट्रपति के पद के अभ्यर्थी के रूप में निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र होने से निरर्हित बनाता हो ।

28. जहां तक सदन के नेता का पद धारण करने का संबंध है, श्री साल्वे ने यह दलील दी कि ऐसा पद धारण करने वाला सामान्य रूप से सरकार का केन्द्रीय मंत्री होता है और वह निश्चित रूप से भारत सरकार द्वारा नियुक्त कोई व्यक्ति नहीं होता है जिससे कि उसे संविधान के अनुच्छेद 58 के खंड (2) के वर्जन के भीतर लाया जा सके । श्री साल्वे ने अपनी इस दलील के समर्थन में कि इस मामले के तथ्यों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के उपबंध लागू नहीं होते हैं, **मांगे राम** बनाम **ब्रज मोहन और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें किसी निर्वाचन अर्जी के विचारण के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता और उच्च न्यायालय नियमों पर विचार किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां आवश्यक हो, सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को लागू किया जा सकता है किन्तु केवल तभी जब उच्च न्यायालय नियम अर्जी के विचारण के दौरान साक्षियों को पेश करने के प्रयोजनार्थ या अन्यथा पर्याप्त रूप से प्रभावी न हों । श्री साल्वे ने **रावन्ना सुबन्ना** बनाम **जी. एस. कगीरप्पा**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जो कि मैसूर टाउन म्युनिसिपल ऐक्ट, 1951 के अधीन एक पार्षद के निर्वाचन से संबंधित मैसूर का एक मामला था । जो दो प्रश्न उठाए गए थे उनमें से एक मुद्दा इस प्रश्न के संबंध में था कि क्या उस मामले में अपीलार्थी के बारे में यह कहा जा सकता था कि वह सरकार के अधीन लाभ का पद धारण किए हुए था और तदद्वारा उसे निरर्हता से संबंधित उपबंध लागू होते थे । माननीय न्यायमूर्तियों ने "लाभ का पद" अभिव्यक्ति के स्पष्ट अर्थ के संबंध में अन्य बातों के साथ-साथ यह मत व्यक्त किया कि "लाभ" शब्द से धनीय अभिलाभ का आशय द्योतित होता है और यदि उसमें वास्तव में कोई अभिलाभ हुआ था तो उसकी मात्रा या रकम तात्विक नहीं होगी बल्कि किसी व्यक्ति द्वारा उस पद के संबंध में, जो वह धारण करता है, प्राप्त होने वाली धनराशि यह विनिश्चित करने के लिए तात्विक हो सकती है कि उस पद के साथ वास्तव में कोई लाभ जुड़ा हुआ है अथवा नहीं । माननीय

---

[1] (1983) 4 एस. सी. सी. 36.

[2] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 653.

न्यायमूर्तियों ने आगे निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "ऊपरकथित तथ्यों से युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 6 रुपए की वह फीस, जो कि गैर-सरकारी अध्यक्ष, समिति की ऐसी प्रत्येक बैठक के लिए, जिसमें वह भाग लेता है, लेने का हकदार है, पारिश्रमिक या लाभ के तौर पर किया जाने वाला संदाय नहीं है बल्कि यह उस व्यय के लिए, जो उसे अपनी ओर से समिति की बैठकों में भाग लेने के लिए उपगत करना पड़ा हो, एक समेकित फीस के रूप में उसे दिया जाने वाला अभिलाभ है । हम यह नहीं समझते कि सरकार का, जिसने इन तालुक विकास समितियों का सृजन किया था जिनमें अनन्य रूप से गैर-सरकारी सदस्य रखे जाने थे, यह आशय था कि अध्यक्ष या सदस्यों के पद के साथ कोई लाभ या पारिश्रमिक जुड़ा होना चाहिए ।"

श्री साल्वे ने इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान मामले में भी भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष पद से उस पद के धारक को कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ था जो कि संपूर्णतः उसके धारक को दिया गया सम्मान था । श्री साल्वे ने **शिबू सोरेन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के उस विनिश्चय के प्रति भी, जिसके प्रति श्री राम जेठमलानी द्वारा पहले ही निर्देश किया गया था, निर्देश किया और यह इंगित किया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 102(1)(क) दोनों सदनों का सदस्य चुने जाने या संसद् के किसी भी सदन का सदस्य होने के लिए निरर्हता के संबंध में है और इससे भारत के राष्ट्रपति के पद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

29. श्री साल्वे द्वारा उपर्युक्त संदर्भ में जिस अंतिम विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया था वह **मधुकर जी. ई. पंकाकर** बनाम **जसवंत छबीलदास रजनी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय था और इस मामले में भी "लाभ का पद" अभिव्यक्ति पर विचार किया गया था । उक्त विनिश्चय के पैरा 31 में **रावन्ना सुबन्ना** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया था और उक्त विनिश्चय के विनिश्चयाधार की बीमा चिकित्सा व्यवसायियों के संबंध में परीक्षा की गई थी । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि याची ने लाभ व्युत्पन्न किया था किन्तु प्रश्न यह था कि क्या वह सरकार के अधीन पद धारण किए हुए था । चूंकि पद को मात्र धारित करना निरर्हता नहीं है, भले

---

[1] (1977) 1 एस. सी. सी. 70.

ही कोई बैठक फीस या नगण्य मानदेय संदत्त क्यों न किया गया हो, अतः अंततोगत्वा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अभ्यर्थिता पर वर्जन या निर्वाचन संबंधी निरर्हता का सारवान् संबंध उसके परिणाम, अर्थात्, नगरपालिक अध्यक्ष के रूप में अपने कर्तव्य करते हुए बीमा चिकित्सा व्यवसायी के रूप में अपनी स्थिति के संभावित दुरुपयोग से अवश्य होना चाहिए ।

30. प्रत्यर्थी द्वारा धारित संस्थान के अध्यक्ष पद से उसका त्यागपत्र स्वीकार किए जाने से संबंधित दूसरे प्रश्न के संबंध में श्री साल्वे ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी द्वारा संस्थान के प्रधान को संबोधित उसके त्यागपत्र में प्रत्यर्थी के हस्ताक्षर और उसके अन्य हस्ताक्षरों में अभिकथित शंका इस बात का संदेह करने का कोई आधार नहीं था कि उक्त दस्तावेज़ कूटरचित था विशेषकर तब जब प्रत्यर्थी द्वारा यह स्वीकार किया गया था कि वे उसके हस्ताक्षर थे और वह पत्रों और दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर करते समय दोनों प्रकार के हस्ताक्षरों का प्रयोग करता है । श्री साल्वे ने इस संबंध में **भारत संघ और अन्य** बनाम **गोपाल चन्द्र मिश्रा और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें इस प्रश्न पर कुछ विस्तार से विचार किया गया है कि पद का त्यजन कब होता है या कब से प्रभावी होता है । पद त्यजन के, चाहे वह तत्काल प्रभाव से हो या किसी भावी तारीख से, विभिन्न पहलुओं पर विचार करते समय इस न्यायालय द्वारा निकाले गए अंतिम निष्कर्षों से जो प्रतिपादनाएं उद्‌भूत हुईं थीं उनमें से एक प्रतिपादना यह थी कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, अध्यक्ष इत्यादि जैसे सांविधानिक कृत्यकारियों के संबंध में अनुच्छेद 217(1)(क) के उपबंधों और समरूप उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, एक बार समुचित प्राधिकारी को त्यागपत्र प्रस्तुत और संसूचित किए जाने के पश्चात् पूर्ण और अप्रतिसंहरणीय हो जाता है और वह स्वबल से कार्य करता है । इसमें एकमात्र अंतर यह है कि जब त्यागपत्र किसी भावी तारीख से पद त्याग करने के आशय से प्रस्तुत किया जाता है, तब उस दशा में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि नियत तारीख से पूर्व ऐसे त्यागपत्र को विखंडित किया जा सकता है ।

31. श्री साल्वे द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट अगला मामला इस न्यायालय द्वारा **मोती राम** बनाम **परम देव**[2] वाले मामले में किया गया विनिश्चय है जिसमें हिमाचल प्रदेश खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड के अध्यक्ष

---

[1] (1978) 2 एस. सी. सी. 301.

[2] (1993) 2 एस. सी. सी. 725.

पद से यह अनुरोध करते हुए त्यागपत्र देने से संबंधित समरूप प्रश्न उद्‌भूत हुआ था कि वह त्यागपत्र पत्र की तारीख से ही मंजूर किया जाए । इस न्यायालय ने उक्त प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त बोर्ड के अध्यक्ष का पद धारण करने वाले व्यक्ति को त्यागपत्र देना चाहिए और वह त्यागपत्र हिमाचल प्रदेश सरकार में विभागाध्यक्ष को संसूचित किए जाने की तारीख से प्रभावी होगा ।

32. श्री साल्वे ने निर्वाचन अर्जी में की एक भिन्न टिप्पणी के आधार पर यह उल्लेख किया कि पैरा 2(XVI) में किए गए अभिकथनों को अर्जीदार द्वारा तारीख 20 अगस्त, 2012 के शपथित सत्यापन और शपथपत्र दोनों में उस जानकारी के आधार पर, जो प्राप्त हुई थी और सही समझी गई थी, सत्य और ठीक माना गया था । श्री साल्वे ने यह दलील दी कि उच्चतम न्यायालय नियमों के आदेश 39 के नियम 6 के अधीन किसी राष्ट्रपतीय निर्वाचन को चुनौती देने वाली निर्वाचन अर्जी में अंतर्विष्ट तथ्य संबंधी अभिकथन अर्जीदार द्वारा व्यक्तिगत रूप से या यदि एक से अधिक अर्जीदार हों तो अर्जीदारों में से किसी एक अर्जीदार की ओर से इस शर्त के अधीन रहते हुए शपथपत्र द्वारा सत्यापित किए जाने आवश्यक थे कि यदि अर्जीदार नियम 6 के परन्तुक में उपदर्शित कारणों से ऐसा कोई शपथपत्र करने में असमर्थ था तो अर्जीदार द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत कोई व्यक्ति आसीन न्यायाधीश की मंजूरी से ऐसा शपथपत्र करने के लिए हकदार होगा । श्री साल्वे ने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में अर्जीदार की ओर से सत्यापन किए जाने का ऐसा कोई अवसर उद्‌भूत नहीं हुआ था ।

33. श्री साल्वे ने "सदन के नेता" के पद के संबंध में संसद् और विशेष रूप से लोक सभा की पद्धति और प्रक्रिया के प्रति निर्देश किया, जिसमें अन्य निकायों की सदस्यता से त्यागपत्र देने के संबंध में सदन के नेता की दशा में जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था वह यह थी कि जब लोक सभा का कोई ऐसा सदस्य, जो संसदीय या सरकारी समितियों, बोर्डों, निकायों का प्रतिनिधित्व कर रहा है, अध्यक्ष को पत्र लिखकर उस निकाय की सदस्यता से त्यागपत्र देने की ईप्सा करता है तो उसे अपना त्यागपत्र उस समिति, बोर्ड या निकाय के अध्यक्ष को संबोधित करना होता है और उस पद को खाली कर देने पर वह समिति का सदस्य नहीं रहता है । श्री साल्वे ने यह दलील दी कि उसके द्वारा कांग्रेस अध्यक्ष और संसद् में कांग्रेस पार्टी की अध्यक्षा को तारीख 20 जून, 2012 को तत्काल प्रभाव से त्यागपत्र देने पर ऐसा त्यागपत्र तुरंत प्रवर्तन में आ गया था और इसके

बाद उसकी औपचारिक स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

34. श्री साल्वे ने यह दलील दी कि "किसी लाभ के पद के धारक" अभिव्यक्ति के संबंध में दी गई दलीलों के होते हुए भी, अर्जीदार उक्त दलील भी नहीं दे सकता क्योंकि संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 में, वर्ष 2006 में किए गए संशोधन के कारण संस्थान के अध्यक्ष के पद को भारत के संविधान के अनुच्छेद 58(2) के निरर्हता संबंधी उपबंधों से अपवर्जित कर दिया गया था । श्री साल्वे ने यह दलील दी कि उपर्युक्त अधिनियम यह घोषित करने के लिए अधिनियमित किया गया था कि सरकार के अधीन कतिपय लाभ के पद, जिनमें किसी कानूनी या अकानूनी निकाय में अध्यक्ष का पद भी है, उसके धारक को अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन यथा-अनुध्यात संसद् सदस्य चुने जाने या होने के लिए निरर्हित नहीं करेंगे । उक्त संशोधन के आधार पर मूल अधिनियम की अनुसूची के पश्चात् एक नई सारणी अंतःस्थापित की गई थी जो कि तारीख 4 अप्रैल, 1959 से अंतःस्थापित की गई समझी जाएगी । भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता को उस सारणी के क्रम संख्यांक 4 पर रखा गया है । तदनुसार, श्री जेठमलानी द्वारा प्रत्यर्थी के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन के लिए नामनिर्देशन फाइल करने की तारीख को संस्थान के अध्यक्ष के रूप में लाभ का पद धारण करने के संबंध में दी गई दलीलें सही नहीं थीं और वे निकाल दी जानी चाहिए थीं ।

35. श्री साल्वे ने यह दलील दी कि पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए श्री पूर्णो अगितोक संगमा द्वारा फाइल की गई निर्वाचन अर्जी उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के नियम 20 में यथा-अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य नहीं थी और वह खारिज की जानी चाहिए थी ।

36. विद्वान महान्यायवादी श्री गुलाम ई. वाहनवती ने प्रथमतः इस बात पर जोर दिया कि "लाभ का पद" अभिव्यक्ति का निर्वचन पांडित्यपूर्ण रीति में नहीं किया जाना चाहिए और पद के कर्तव्यों और कृत्यों और उसके धारक को व्युत्पन्न फायदों को ध्यान में रखते हुए उस पर विचार किया जाना है । श्री वाहनवती ने यह इंगित किया कि संस्थान के अध्यक्ष का पद पूर्णतः अवैतनिक पद था जो कि उसके धारक को सम्मान देने के लिए था । इसमें अध्यक्ष द्वारा संस्थान के प्रशासन में सक्रिय भाग लेना अपेक्षित नहीं था जिसकी देखभाल प्रधान और संस्थान के नियमों और विनियमों के अधीन गठित उसकी परिषद् करती थी । श्री वाहनवती ने यह

दलील भी दी कि वह पद पूर्णतः अवैतनिक स्वरूप का था और इससे उसके धारक को किसी भी प्रकार से या तो धनीय रूप से या अन्यथा कोई फायदा नहीं मिलता था और न ही उससे कोई लाभ व्युत्पन्न होने की कोई संभाव्यता थी । तदनुसार, भले ही श्री जेठमलानी ने यह दलील दी है कि नामनिर्देशन फाइल करने की तारीख को प्रत्यर्थी उक्त पद धारण किए हुए था तो भी इससे वह राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने से निरर्हित नहीं हो जाएगा ।

37. इस संबंध में, विद्वान महान्यायवादी ने **कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सोसायटी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें लाभ का पद धारण करने वाले व्यक्तियों के संसद् सदस्यों के रूप में बने रहने संबंधी निरर्हता के संबंध में 2006 के संशोधन अधिनियम द्वारा यथा-संशोधित 1959 के अधिनियम के उपबंधों पर विचार किया गया था । इस न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई रिट याचिकाओं में अनुच्छेद 101(3)(क) और अनुच्छेद 103 के उपबंधों पर विचार करते हुए, संसद् (निरर्हता निवारण) संशोधन अधिनियम, 2006 की सांविधानिकता को इस आधार पर प्रश्नगत किया गया था कि उक्त अधिनियम द्वारा उन "लाभ के पदों" को सूची में भूतलक्षी रूप से जोड़ा गया था जो उनके धारक को संसद् सदस्यों के रूप में चुने जाने के लिए निरर्हित नहीं करते हैं । रिट याचियों ने यह दलील दी कि वह संशोधन यह सुनिश्चित करने के लिए लाया गया था कि उन व्यक्तियों को, जो निरर्हताएं उपगत करने के कारण संसद् सदस्य नहीं रह गए थे निर्वाचन के बिना संसद् में पुनः प्रवेश दिया जाएगा, जिससे रिट याचियों के अनुसार, संविधान के अनुच्छेद 101 से अनुच्छेद 104 के उपबंधों का अतिक्रमण हुआ था ।

38. इस न्यायालय ने उक्त प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया था कि अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन कोई विधि अधिनियमित करने संबंधी संसद् की शक्ति में ऐसी विधि को भूतलक्षी रूप से अधिनियमित करने की संसद् की शक्ति भी शामिल है, जैसा कि **कांता कथूरिया** बनाम **मानक चन्द सुराना**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया था और बाद में **इंदिरा नेहरू गांधी** बनाम **राज नारायण**[3] वाले मामले

---

[1] (2009) 9 एस. सी. सी. 648.

[2] (1969) 3 एस. सी. सी. 268.

[3] (1975) सप्ली. एस. सी. सी. 1.

में दिए गए विनिश्चय में इसका अनुसरण किया गया था । तदनुसार, यदि कोई व्यक्ति अपने निर्वाचन के समय किसी निरर्हता के अधीन था तो संविधान के अनुच्छेद 101(3)(क) और अनुच्छेद 103 के उपबंध लागू नहीं होंगे और वह तब तक संसद सदस्य के रूप में बना रहेगा जब तक कि उच्च न्यायालय उस आधार पर फाइल की गई निर्वाचन अर्जी में यह घोषित नहीं कर देता है कि निर्वाचन की तारीख को वह निरर्हित था और परिणामस्वरूप उसके निर्वाचन को शून्य घोषित नहीं कर देता है । दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 101(3)(क) के अधीन रिक्ति केवल तभी उद्‌भूत होगी जब ऐसी निरर्हता के संबंध में सभापति या अध्यक्ष द्वारा सदन में विनिश्चय कर दिया गया था ।

39. **कारभारी भीमाजी रोहमारे** बनाम **शंकर राव गेनुजी कोल्हे और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया गया था जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि महाराष्ट्र सरकार द्वारा गठित चीनी उद्योग के लिए मजदूरी बोर्ड के सदस्य ने, जो कि एक अवैतनिक पद था और सदस्यों को संदत्त किया जाने वाला मानदेय प्रतिकरात्मक भत्ते की प्रकृति का था, ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया था जो कि आवश्यक रूप से राज्य की न्यायिक शक्ति का एक भाग थीं । अतः, ऐसा सदस्य सरकार के अधीन कोई पद धारण नहीं किए हुए था ।

40. इसके अलावा, **प्रद्युत बोरदोलोई** बनाम **स्वप्न राय**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के एक अन्य विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया था जिसमें कोल इंडिया लिमिटेड में, जो कि एक ऐसी कंपनी है जिसमें सरकार शत-प्रतिशत शेयरधारक है, क्लर्क ग्रेड-I के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह ऐसा कोई लाभ का पद नहीं है जो उसके धारक को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 10 या भारत के संविधान के अनुच्छेद 191(1)(क) के अधीन निरर्हित बनाता हो । इस मामले को विनिश्चित करते समय इस न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि "लाभ का पद" अभिव्यक्ति की परिभाषा संविधान में नहीं दी गई है । यह मत व्यक्त किया गया था कि इस स्थिति में पूछा जाने वाला प्रथम प्रश्न यह था कि क्या सरकार को किसी व्यक्ति को उस पद पर नियुक्त करने या उससे हटाने की शक्ति है और यदि इसका उत्तर नकारात्मक है तो कोई और जांच की जानी अपेक्षित नहीं है । किन्तु, यदि इसका उत्तर

---

[1] (1975) 1 एस. सी. सी. 252.

[2] (2001) 2 एस. सी. सी. 19.

सकारात्मक है तो सरकार द्वारा उस पद के धारक पर रखे जाने वाले नियंत्रण के बारे में आगे जांच की जानी होगी । चूंकि उक्त मामले में, भारत सरकार ने प्रत्यर्थी की नियुक्ति, हटाए जाने, सेवा शर्तों और उसके कार्यकरण के संबंध में किसी नियंत्रण का प्रयोग नहीं किया था इसलिए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उक्त प्रत्यर्थी भारत सरकार के अधीन लाभ का पद धारण नहीं करता था और कोल इंडिया लिमिटेड में उसके क्लर्क होने से विधान सभा के सदस्य के रूप में उसके स्वतंत्र कार्यकरण पर कोई प्रभाव या दबाव नहीं पड़ा था ।

41. विद्वान महान्यायवादी ने अंत में **अशोक कुमार भट्टाचार्य** बनाम **अजय विश्वास और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया और उस मामले में भी यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ था कि कौन-सी बात सरकार के अधीन लाभ के पद की कोटि में आती है और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि स्थानीय प्राधिकरण में कर्मचारी सरकार के अधीन लाभ के पद धारण नहीं करते थे और इसलिए वे भारत के संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) और अनुच्छेद 191(1)(क) के अधीन या बंगाल म्युनिसिपल ऐक्ट, 1932 के उपबंधों के अधीन निरर्हित नहीं थे । माननीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के उपबंधों का विश्लेषण करने पर यह पूर्णतः स्पष्ट था कि यद्यपि सरकार ने कतिपय मात्रा में नियंत्रण और पर्यवेक्षण का प्रयोग किया था तथापि प्रत्यर्थी, जो कि असम राज्य में अगरतला नगरपालिका का भारसाधक लेखाकार था, सरकार का कर्मचारी नहीं था और वह सुसंगत समय पर स्थानीय नगरपालिका के अधीन लाभ का पद धारण किए हुए था जिसके कारण वह संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) की परिधि के भीतर नहीं आता था ।

42. विद्वान महान्यायवादी ने यह दलील दी कि निरर्हता अधिनियम कोई पारिभाषिक अधिनियम नहीं है और न ही कभी ऐसा अभिप्रेत था और कोई भी अनुसूची में उस दशा में यह परिभाषा शामिल नहीं कर सकता जहां केवल संस्थान का उल्लेख किया जाता है । विद्वान महान्यायवादी ने श्री साल्वे द्वारा अभिव्यक्त भावों का समर्थन करते हुए यह दलील दी कि निर्वाचन अर्जी खारिज की जानी चाहिए थी ।

43. श्री राम जेठमलानी ने श्री हरीश साल्वे और विद्वान महान्यायवादी द्वारा दी गई दलीलों का उत्तर देते हुए यह प्राख्यान किया कि 1959 का

---

[1] (1985) 1 एस. सी. सी. 151.

अधिनियम वास्तव में एक पारिभाषिक अधिनियम है और वह संविधान की सातवीं अनुसूची की पहली सूची की प्रविष्टि 73 के अंतर्गत आता है, जो संसद् को संसद् के लिए, राज्यों के विधान-मंडलों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों और निर्वाचन आयोग के लिए निर्वाचन के संबंध में विधान बनाने के लिए सशक्त करती है । श्री जेठमलानी ने इस बात पर भी जोर दिया कि संस्थान पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण था । वह अधिनियम जिसके अधीन संस्थान का गठन किया गया था, केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया अधिनियम था और इसलिए अध्यक्ष के पद के बारे में यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह केन्द्रीय सरकार के अधीन लाभ का पद था ।

44. श्री जेठमलानी ने अपने इस पूर्ववर्ती पक्षकथन को दोहराते हुए कि निर्वाचन अर्जी नियमित रूप से सुनवाई किए जाने योग्य है, **एम. वी. राजशेखरन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसमें कर्नाटक सरकार द्वारा कन्नड़ भाषियों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए नियुक्त किए गए एक-सदस्यीय आयोग के अध्यक्ष के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह सरकार के अधीन लाभ का पद धारण किए हुए है क्योंकि उसे केन्द्रीय मंत्री का रैंक प्रदान किया गया था और अध्यक्ष के वेतन और दिन-प्रतिदिन के व्ययों को पूरा करने के लिए 5 लाख रुपए के बजट का उपबंध किया गया था । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इस प्रश्न का निर्धारण मामले के विशिष्ट तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में करना होगा कि कोई व्यक्ति सरकार के अधीन लाभ का पद धारण किए हुए था अथवा नहीं ।

45. श्री जेठमलानी ने अंत में **कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सोसायटी** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जिसका उल्लेख विद्वान महान्यायवादी द्वारा किया जा चुका था और न्यायालय का ध्यान उस निर्णय के पैरा 77 में की गई मताभिव्यक्तियों की ओर आकर्षित किया जहां कि यह मत व्यक्त किया गया था कि यह संसद् द्वारा विचार किए जाने का विषय है कि किस किस्म का पद सरकार के अधीन लाभ के पद की कोटि में आएगा और ऐसे लाभ के पद को छूट प्रदान की जानी है अथवा नहीं । किसी पद को छूट प्रदान करने के लिए विधान बनाते समय विधान-मंडल के सदस्यों की स्वतंत्रता को संरक्षित करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे कार्यपालिका के किसी भी प्रकार के असम्यक् प्रभाव से मुक्त हों, इस प्रश्न को ध्यान में रखना होता है कि क्या

ऐसा पद संसद् सदस्य के रूप में उसकी स्थिति से संगत है और क्या उसकी स्वतंत्रता से समझौता तो नहीं होगा और क्या संविधान के प्रति उसकी निष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव तो नहीं पड़ेगा । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि चूंकि प्रत्यर्थी ने केन्द्रीय सरकार के अधीन पद धारित किया था इसलिए इस बात पर विचार किया जाना होगा कि क्या यह भारत के राष्ट्रपति के रूप में उसके कार्यकरण के लिए किसी भी प्रकार से जोखिमपूर्ण होगा या इससे उस पर प्रभाव पड़ेगा ।

46. श्री जेठमलानी ने उत्तर देते समय इस बात पर जोर देकर अपनी दलीलों को एक नया आयाम दिया कि संस्थान के नियमों और उसकी उपविधियों में अध्यक्ष को एक बार नियुक्त हो जाने के पश्चात् अपने पद से त्यागपत्र देने की अनुज्ञा नहीं दी गई है । तदनुसार, भले ही प्रत्यर्थी ने उसके प्रधान डा. मेनन को अपना त्यागपत्र दे दिया था तो भी वह प्रभावी नहीं हुआ था और वह संस्थान के अध्यक्ष के रूप में बना रहा था । अतः, वह राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए निरर्हित था और उसके निर्वाचन को शून्य घोषित किया जाना चाहिए और उसके स्थान पर अर्जीदार को देश के सम्यक् रूप से निर्वाचित राष्ट्रपति के रूप में घोषित किया जाना चाहिए ।

47. संविधान में उस रीति के संबंध में उपबंध किया गया है जिसमें राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को प्रश्नगत किया जा सकता है । अनुच्छेद 71 में राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त विषयों के लिए उपबंध किया गया है । अनुच्छेद 71 के खंड (1) में यह उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा । उपखंड (3) में यह उपबंध है कि संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त किसी विषय का विनियमन संसद् विधि द्वारा कर सकेगी । इसके अलावा, राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम वर्ष 1952 में भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन से संबंधित या संसक्त कतिपय विषयों का विनियमन करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था । जैसा कि श्री साल्वे ने उपदर्शित किया है, 1952 के अधिनियम की धारा 14 और धारा 14क में उसके अधीन निर्वाचन अर्जियों का उसमें उपदर्शित रीति में विचारण करने की अधिकारिता विशेष रूप से उच्चतम न्यायालय में निहित की गई है । वास्तव में, उक्त अधिनियम का भाग 3 भारत के राष्ट्रपति और

उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों से संबंधित विवादों के संबंध में है जिसमें धारा 14 और धारा 14क तथा धारा 17 और धारा 18 हैं, जिनमें उच्चतम न्यायालय को या तो निर्वाचन को खारिज करने या निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने की या निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने और अर्जीदार या किसी अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित करने की शक्ति दी गई है ।

48. उच्चतम न्यायालय ने, अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (3) को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 145 के अधीन नियम विरचित किए हैं जो कि उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 में अंतर्विष्ट हैं । जैसा कि इससे पूर्व चर्चा की गई है, आदेश 39 के नियम 13 में यह उपबंध किया गया है कि भारत के राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन को चुनौती देने से संबंधित कोई अर्जी पेश किए जाने पर उसे प्रारंभिक सुनवाई करने और इस बात पर विचार करने के लिए न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष रखा जाएगा कि अर्जी आदेश 39 के नियम 20 में यथा-अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है अथवा नहीं और उस संदर्भ में ऐसी न्यायपीठ या तो अर्जी को खारिज कर सकती है या कोई ऐसा समुचित आदेश पारित कर सकती है, जो वह उपयुक्त समझे ।

49. उपर्युक्त स्कीम के अधीन ही श्री पूर्णो अगितोक संगमा द्वारा श्री प्रणब मुखर्जी के भारत के राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को चुनौती देते हुए फाइल की गई प्रस्तुत निर्वाचन अर्जी पर इस प्रश्न के संबंध में प्रारंभिक सुनवाई की गई है कि क्या वह नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है अथवा नहीं ।

50. यह चुनौती मुख्य रूप से इस अभिकथन पर आधारित है कि नामनिर्देशन फाइल करने की तारीख को प्रत्यर्थी श्री प्रणब मुखर्जी, "लाभ का पद" अर्थात् :–

(i) भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष ; और

(ii) लोक सभा में सदन के नेता,

का पद धारण किए हुए थे ।

अर्जीदार की ओर से हाजिर होने वाले श्री राम जेठमलानी ने उपर्युक्त चुनौतियों के संबंध में इस बात पर जोर दिया था कि उक्त दो विवाद्यकों के बारे में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक था कि

अर्जीदार द्वारा किए गए अभिकथनों की सच्चाई का पता लगाने के लिए निर्वाचन अर्जी की बाबत नियमित सुनवाई की जाए । यह भी निवेदन किया गया था कि इसकी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के अधीन यथा-अनुध्यात रीति में पूर्णरूपेण सुनवाई की जानी आवश्यक है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के भाग 3 में अंतर्विष्ट उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता से संबंधित उपबंधों के साथ पठित आदेश 39 से स्पष्ट होता है ।

51. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले श्री हरीश साल्वे ने इस बात पर जोर दिया है कि नामनिर्देशन फाइल करने की तारीख को श्री प्रणब मुखर्जी न तो उपर्युक्त संस्थान के अध्यक्ष का पद धारण किए हुए थे और न ही वे लोक सभा में सदन के नेता थे, क्योंकि उन्होंने दोनों पदों से अपना त्यागपत्र तारीख 20 जून, 2012 को दे दिया था ।

52. इस संबंध में कुछ शंका है कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अध्यक्ष का पद लाभ का पद है अथवा नहीं हालांकि उसे 2006 में यथा-संशोधित संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 के उपबंधों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 102 की परिधि से अपवर्जित कर दिया गया है । इसे उन पदों की सारणी में सम्मिलित किए जाने पर, जिन्हें संसद् की सदस्यता से निरर्हित होने से व्यावृत्त किया गया है, लाभ के पद के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए । तथापि, जैसी कि श्री साल्वे द्वारा दलील दी गई है, पद को लाभ के पद के रूप में प्रवर्गीकृत करने से वह वास्तव में ऐसा पद नहीं बन जाता क्योंकि इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता था और वह पूर्णतः अवैतनिक प्रकृति का था । उक्त पद के धारक के साथ न तो कोई वेतन, न ही कोई मानदेय या कोई अन्य फायदा जुड़ा हुआ था । यह ऐसा पद नहीं था जिससे वस्तुतः कोई ऐसा लाभ प्राप्त किया जा सकता था जो उसे वास्तव में लाभ का पद बना सकता था ।

53. उक्त प्रतिपादना के संबंध में **शिबू सोरेन** (उपर्युक्त) वाले मामले में विचार किया गया था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "मानदेय" शब्द का प्रयोग मात्र उस संदाय को लाभ की संकल्पना से बाहर नहीं ले जाएगा यदि प्राप्तिकर्ता को प्रतिकरात्मक भत्तों की प्रकृति के दैनिक भत्तों, राज्य के खर्च पर किराया-मुक्त वास-सुविधा और चालक सहित कार के अलावा कुछ धनीय अभिलाभ हुआ था ।

54. इसी प्रकार का मत **जया बच्चन** (उपर्युक्त) वाले मामले में

व्यक्त किया गया था और उसमें इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि जो कुछ सुसंगत था वह यह था कि क्या उस पद से मूल व्यय/वास्तविक व्ययों की प्रतिपूर्ति से भिन्न कोई लाभ या धनीय अभिलाभ प्राप्त हो सकता था न कि क्या उस व्यक्ति ने वास्तव में कोई धनीय अभिलाभ प्राप्त किया था या ऐसी उपलब्धियों को नहीं निकाला था जिनका वह हकदार था । दूसरे शब्दों, यह बात तात्विक नहीं थी कि क्या पद धारण करने वाले व्यक्ति ने उसके अधीन फायदों को स्वीकार किया था अथवा नहीं बल्कि जो कुछ तात्विक था वह यह था कि क्या उक्त पद से कोई लाभ या धनीय अभिलाभ प्राप्त किया जा सकता था ।

55. वर्तमान मामले में, संस्थान के अध्यक्ष के पद से इसमें इसके ऊपर उपदर्शित कोई भी सुख-सुविधा प्रदान नहीं की जाती थी और वास्तव में उक्त पद द्वारा कोई लाभ या धनीय अभिलाभ प्राप्त भी नहीं किया जा सकता था ।

56. सदन के नेता के पद के संबंध में यह पूर्णतः स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी ने राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने से पहले अपना त्यागपत्र दे दिया था । इस संविवाद का अंत कि प्रत्यर्थी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उसकी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति की सदस्यता से अभिकथित रूप से तारीख 25 जून, 2012 को त्यागपत्र दिया था, श्री प्रदीप गुप्ता द्वारा, जो कि भारत के राष्ट्रपति के निजी सचिव हैं, फाइल किए गए शपथपत्र द्वारा कर दिया गया था । श्री गुप्ता ने उक्त शपथपत्र में यह उपदर्शित किया है कि उसने केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा श्री मुखर्जी को राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए उसका नामनिर्देशन स्वीकार किए जाने पर उसे विदाई देने के लिए आयोजित की गई बैठक की तारीख अनवधानतावश 25 जून, 2012 दी थी । तथापि, सदन के नेता का पद धारण करने के कारण अनुध्यात निरर्हता, सदन में दल के नेता की हैसियत होने के अलावा, जो कि सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करना नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) के उपबंधों के संबंध में थी । बहरहाल, चूंकि प्रत्यर्थी ने अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने के पूर्व उक्त पद से त्यागपत्र दे दिया था, जिस पर सदन के अध्यक्ष द्वारा सम्यक् रूप से कार्यवाही कर दी गई थी, इसलिए अर्जीदार द्वारा भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी के निर्वाचन को उक्त आधार पर दी गई चुनौती की सुसंगतता समाप्त हो गई है । तथापि, 2006 में यथा-संशोधित संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 के उपबंधों द्वारा संस्थान के अध्यक्ष के पद को संसद् का सदस्य बनने संबंधी

निरर्हता से अपवर्जित कर दिया गया था ।

57. संविधान के अनुच्छेद 58 के खंड (2) के स्पष्टीकरण में यथा-उल्लिखित सांविधानिक स्कीम से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि उक्त अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए कोई व्यक्ति अन्य बातों के साथ-साथ केवल इस कारण कोई लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या किसी राज्य का मंत्री है । संविधान के अनुच्छेद 102 में समरूप उपबंध अंतर्विष्ट हैं जिसके खंड (1) के स्पष्टीकरण में इसी प्रकार उपदर्शित किया गया है कि उक्त खंड के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है । इस तर्क में कि संविधान के अनुच्छेद 102 तथा अनुच्छेद 58 के उपर्युक्त उपबंध राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित किसी व्यक्ति को तब निरर्हित होने से व्यावृत्त नहीं कर सकते यदि वह लाभ का पद धारण करता है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कोई बल नहीं है कि, जैसा कि अभिलेख पर विद्यमान सामग्री से प्रकट होता है, प्रत्यर्थी राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल करने के समय सरकार के अधीन या अन्यथा कोई लाभ का पद धारण नहीं किए हुए था ।

58. पक्षकारों की ओर से अपनी-अपनी दलीलों के समर्थन में उद्धृत विभिन्न विनिश्चयों से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि लाभ का पद होने के लिए उस पद के साथ विभिन्न धनीय फायदे अवश्य जुड़े होने चाहिए या वह पद धनीय फायदे पहुंचाने में समर्थ होना चाहिए जैसे शासकीय वास-सुविधा या चालक सहित कार उपलब्ध कराना, जो कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष के पद की बाबत नहीं है और जो वास्तव में श्री जेठमलानी द्वारा दी गई दलीलों का केन्द्र-बिन्दु और मुख्य प्रयोजन है ।

59. हम श्री जेठमलानी की इस दलील को भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि जब किसी व्यक्ति को भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है तो सोसायटी के नियम और उप-विधियां उसे उस पद से त्यागपत्र देने की अनुज्ञा नहीं देतीं और यह कि उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध उस पद पर बने रहना पड़ता है । ऐसी कोई संविदात्मक बाध्यता नहीं है कि अध्यक्ष को, एक बार नियुक्त कर दिए जाने पर संपूर्ण कार्यकाल के लिए उसी पद पर बने रहना होगा । सोसायटी के नियमों और उप-विधियों में भी ऐसी कोई बाध्यता नहीं है ।

बहरहाल, चूंकि संस्थान के अध्यक्ष के पद के धारक को संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 में 2006 में किए गए संशोधन द्वारा राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने संबंधी निरर्हता से अपवर्जित कर दिया गया है इसलिए इस संबंध में श्री जेठमलानी द्वारा दी गई दलीलों में कतई या कोई सार नहीं है ।

60. हम इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं कि मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निर्वाचन अर्जी उच्चतम न्यायालय नियमों के आदेश 39 के नियम 20 के अधीन यथा-अनुध्यात पूर्ण और नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है । परिणामस्वरूप, निर्वाचन अर्जी के विचारण के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के लागू होने के संबंध में श्री जेठमलानी द्वारा दी गई दलीलों का कोई महत्व नहीं है । हम इस बात को भी स्वीकार नहीं करते हैं कि राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 के भाग 2, जिसमें पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 14 से धारा 20 भी है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 71 के साथ पठित उच्चतम न्यायालय नियमों के आदेश 39 के अधीन की गई कार्यवाही में, संहिता की धारा 141 को सम्मिलित करने की आवश्यकता है ।

61. इस प्रक्रम पर यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि इस न्यायालय ने बार-बार यह चेतावनी दी है कि किसी ऐसे अभ्यर्थी के निर्वाचन में, जो निर्वाचन में विजयी हुआ है, जब तक कि परिस्थितियां ऐसी अपेक्षा न करें, सामान्यतया हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

62. अतः, हम निर्वाचन अर्जी को नियमित सुनवाई के लिए रखने के लिए तैयार नहीं हैं और उसे उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के नियम 13 के अधीन खारिज करते हैं ।

63. मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में पक्षकार इन कार्यवाहियों में के अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

न्या. रंजन गोगोई –

64. मुझे भारत के विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त की गई राय का अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । सादर, मैं उक्त राय में व्यक्त किए गए विचारों से सहमत नहीं हूं । मैंने अपने निष्कर्षों के कारणों को नीचे उपदर्शित किया है ।

65. इस प्रक्रम पर एक संक्षिप्त प्रश्न, जो निर्वाचन अर्जी में अवधारण

के लिए उद्‌भूत हुआ है वह यह है कि यह उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 39 के नियम 20 के अधीन नियमित सुनवाई के योग्य है अथवा नहीं ।

66. प्रश्नगत निर्वाचन अर्जी, भारत के राष्ट्रपति के पद के लिए (जिसे इसमें इसके पश्चात् "राष्ट्रपति" कहा गया है) प्रत्यर्थी के निर्वाचन को चुनौती देते हुए फाइल की गई है । वह निर्वाचन, जिसमें अर्जीदार और प्रत्यर्थी निर्वाचन लड़ने वाले अभ्यर्थी थे, निम्नलिखित कार्यक्रम के अनुसार आयोजित किया गया था :

निर्वाचन कराने संबंधी अधिसूचना जारी करने की तारीख	16 जून, 2012
नामनिर्देशन पत्र भरने की अंतिम तारीख	30 जून, 2012
संवीक्षा की तारीख	2 जुलाई, 2012
नाम वापस लेने की अंतिम तारीख	4 जुलाई, 2012
मतदान की तारीख, यदि आवश्यक हो	19 जुलाई, 2012
मतगणना की तारीख, यदि आवश्यक हो	22 जुलाई, 2012

67. निर्वाचन अर्जीदार और प्रत्यर्थी, दोनों ने ही तारीख 28 जून, 2012 को रिटर्निंग आफिसर के समक्ष अपने नामनिर्देशन पत्र फाइल किए थे । 84 व्यक्तियों द्वारा फाइल किए गए कुल 106 नामनिर्देशन पत्रों की नियत तारीख, अर्थात् 2 जुलाई, 2012 को संवीक्षा की गई थी । अर्जीदार ने प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी कि प्रत्यर्थी उक्त तारीख, अर्थात् 2 जुलाई, 2012 को भारतीय सांख्यिकी संस्थान परिषद्, कोलकाता के अध्यक्ष का पद (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अध्यक्ष, आई. एस. आई.' कहा गया है) धारण किए हुआ था, जो कि एक लाभ का पद है । अर्जीदार के अनुसार, प्रत्यर्थी के प्रतिनिधि के अनुरोध पर, प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन की संवीक्षा, अगले दिन, अर्थात् 3 जुलाई, 2012, अपराह्न 3.00 बजे तक के लिए आस्थगित कर दी गई थी और उसे अपराह्न 2.00 बजे तक प्रत्युत्तर, यदि कोई हो, फाइल करने का समय दिया गया । प्रसंगवश, निर्वाचन अर्जीदार के नामनिर्देशन के प्रति कतिपय आक्षेप उठाए जाने पर, उस पर विचार किए जाने की कार्रवाई तारीख 3 जुलाई, 2012, पूर्वाह्न 11 बजे तक के लिए आस्थगित कर दी गई थी ।

शेष सभी नामनिर्देशन पत्र संवीक्षा के लिए नियत तारीख, अर्थात् 2 जुलाई, 2012 को नामंजूर कर दिए गए थे ।

68. अगली तारीख, अर्थात् 3 जुलाई, 2012 को नियत समय, अर्थात् पूर्वाह्न 11 बजे निर्वाचन अर्जीदार के नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा की गई थी और रिटर्निंग आफिसर द्वारा उन्हें स्वीकार कर लिया गया था । तत्पश्चात् पूर्ववर्ती तारीख को प्रदत्त समय अर्थात् अपराह्न 2.00 बजे के भीतर प्रत्यर्थी ने, अर्जीदार द्वारा उठाए गए आक्षेपों के प्रति एक लिखित उत्तर, तारीख 20 जून, 2012 के, जिस तारीख को प्रत्यर्थी ने अध्यक्ष, आई. एस. आई. के पद से त्यागपत्र देने का दावा किया है, त्यागपत्र की प्रति के साथ, प्रस्तुत किया । प्रत्यर्थी के नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा तारीख 3 जुलाई, 2012 को अपराह्न 3.00 बजे की गई थी और तत्पश्चात् रिटर्निंग आफिसर द्वारा उन्हें स्वीकार कर लिया गया था ।

69. निर्वाचन आयोग द्वारा प्रकाशित निर्वाचन कार्यक्रम के अनुसार तारीख 19 जुलाई, 2012 को मतदान हुआ और तारीख 22 जुलाई, 2012 को मतगणना परिणाम घोषित किया गया था, जिसमें प्रत्यर्थी को भारत के राष्ट्रपति के पद पर सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित किया गया था ।

70. यह दलील देते हुए कि सभी सुसंगत तारीखों को, जिनके अंतर्गत संवीक्षा की तारीख अर्थात् 2 जुलाई, 2012 भी है, प्रत्यर्थी भारतीय सांख्यिकी संस्थान परिषद्, कोलकाता के अध्यक्ष का पद और सदन (लोक सभा) के नेता का पद तथा लोक सभा में कांग्रेस पार्टी के नेता का पद, जो लाभ के पद हैं, धारण किए हुए था, वर्तमान निर्वाचन अर्जी इस आधार पर फाइल की गई है कि लाभ के पूर्वोक्त पद धारण करने के आधार पर प्रत्यर्थी, भारत के राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन हेतु अभ्यर्थी होने के लिए अर्हित नहीं था और यह कि रिटर्निंग आफिसर ने प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत नामनिर्देशन को गलत रूप से स्वीकार किया था । निर्वाचन अर्जीदार के अनुसार, प्रत्यर्थी का निर्वाचन उक्त आधार पर शून्य घोषित किए जाने योग्य है । निर्वाचन अर्जीदार द्वारा फाइल की गई निर्वाचन अर्जी में और उस संक्षिप्त प्रत्युत्तर में, जो अभिलेख पर लाया गया है, प्रत्यर्थी के इस दावे को कि उसने तारीख 20 जून, 2012 को अध्यक्ष, आई. एस. आई. के पद से त्यागपत्र दे दिया था, आक्षेपित किया गया है । अर्जीदार के अनुसार तारीख 20 जून, 2012 का त्यागपत्र कूटरचित और गढ़ा हुआ है और उसे निर्वाचन अर्जीदार द्वारा किए गए पक्षकथन का प्रतिकार करने के लिए बाद में अस्तित्व में लाया गया है । जहां तक अन्य पदों का संबंध है,

निर्वाचन अर्जीदार के अनुसार, यद्यपि प्रत्यर्थी ने तारीख 26 जून, 2012 को संघ मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया था, तथापि, वह तारीख 25 जुलाई, 2012 तक अर्थात् भारत के राष्ट्रपति के रूप में पद ग्रहण करने की तारीख तक संसद् सदस्य और लोक सभा में कांग्रेस विधायिका दल का नेता बना रहा था । प्रत्यर्थी को, वस्तुतः लोक सभा की शासकीय वेबसाइट पर तारीख 2 जुलाई, 2012 तक संसद् सदस्य और सदन के नेता के रूप में दिखाया गया था ।

71. प्रत्यर्थी अर्थात् निर्वाचित अभ्यर्थी ने प्रारंभिक सुनवाई के प्रयोजनों के लिए एक संक्षिप्त प्रत्युत्तर फाइल किया है । प्रत्यर्थी के अनुसार अध्यक्ष, आई. एस. आई. का पद लाभ का पद नहीं है, क्योंकि इससे कोई उपलब्धियां, पारिश्रमिक या परिलब्धियां जुड़ी हुई नहीं हैं । प्रत्यर्थी के अनुसार, बहरहाल उसने तारीख 20 जून, 2012 को उक्त पद से अपना त्यागपत्र दे दिया था, जिसे संस्थान के प्रधान द्वारा उसी दिन स्वीकार कर लिया गया था । जहां तक दो अन्य पदों का संबंध है, प्रत्यर्थी का पक्षकथन यह है कि वह उक्त पद संघ के मंत्रिमंडल के सदस्य होने के आधार पर धारण किए हुए था । प्रत्यर्थी के अनुसार, संसद् में मान्यताप्राप्त दलों और समूहों के नेता और मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) अधिनियम, 1998 और उसके अधीन विरचित नियमों के अधीन पूर्वोक्त पदों से कोई उपलब्धियां या परिलब्धियां अथवा फायदे जुड़े हुए नहीं हैं, उनके सिवाय, जो संघ के मंत्रिमंडल के सदस्य के पद से जुड़े हुए हैं । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी के अनुसार, उसने तारीख 20 जून, 2012 को कांग्रेस दल से और लोक सभा में विधायिका दल के नेता के पद से तथा तारीख 26 जून, 2012 को संघ के मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया था । अतः, वह सुसंगत तारीख अर्थात् उसके नामनिर्देशन की संवीक्षा और उसे स्वीकार किए जाने की तारीख को लाभ का कोई पद धारण नहीं किए हुए था ।

72. संविधान का अनुच्छेद 71, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त विषयों के बारे में उपबंध करता है । अनुच्छेद 71 के खंड (1) में उपबंधित है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और उनका विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा । खंड (3) के अधीन, संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त किसी विषय का विनियमन करने के लिए संसद् को विधियां बनाने के लिए सशक्त किया गया है ।

73. संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 72 के साथ पठित अनुच्छेद 71 (3) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद् ने राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1952 का 31) विरचित किया है । पूर्वोक्त अधिनियम के भाग 3 में निर्वाचन संबंधी विवादों के संबंध में उपबंध किए गए हैं । धारा 14(1) में यह उपबंधित है कि कोई भी निर्वाचन उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्राधिकरण, अर्थात् उच्चतम न्यायालय को पेश की गई निर्वाचन अर्जी द्वारा ही प्रश्नगत किया जाएगा, अन्यथा नहीं । धारा 14(3) में यह उपबंधित है कि हर निर्वाचन अर्जी अधिनियम के भाग 3 और ऐसे नियमों में, जो उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 145 के अधीन बनाए जाएं, अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार पेश की जाएगी । अधिनियम का अगला उपबंध, जिस पर विनिर्दिष्ट रूप से अवेक्षा की जानी अपेक्षित है, धारा 15 है, जिसमें यह उपबंधित है कि संविधान के अनुच्छेद 145 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए गए नियम, निर्वाचन अर्जियों के प्ररूप का, उस रीति का, जिसमें उन्हें पेश किया जाना है, उन व्यक्तियों का, जो इसके पक्षकार बनाए जाने हैं, उसके संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का और उन परिस्थितियों का, जिनमें अर्जियों का शमन हो सकेगा या जिनमें वे वापस ली जा सकेंगी और जिनमें नए अर्जीदार प्रतिस्थापित किए जा सकेंगे, विनियमन कर सकेंगे और खर्चे के लिए प्रतिभूति दिए जाने की अपेक्षा कर सकेंगे । पूर्वोक्त अधिनियम के शेष उपबंधों का, जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, कोई उल्लेख करना आवश्यक नहीं है ।

74. संविधान के अनुच्छेद 145 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के आधार पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए भारत के राष्ट्रपति के अनुमोदन से उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् 'नियम' कहा गया है) विरचित किए गए हैं । उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के भाग 7 में अंतर्विष्ट आदेश 39, राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 के भाग 3 के अधीन फाइल की गई निर्वाचन अर्जियों के बारे में है । आदेश 39 के नियम 13 (तारीख 20 दिसंबर, 1997 से अंतःस्थापित), नियम 20 और नियम 34 के उपबंधों को, जो इससे सुसंगत हैं, नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "13. कोई अर्जी पेश किए जाने पर उसे प्रारंभिक सुनवाई के लिए और अर्जी की तामील संबंधी आदेशों के लिए और उसके ऐसे

विज्ञापन के लिए, जो न्यायालय उचित समझे तथा अर्जी की सुनवाई के लिए समय नियत करने के लिए न्यायालय के पांच न्यायाधीशों से मिलकर बनी एक न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा । प्रारंभिक सुनवाई किए जाने पर, यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि वह अर्जी इस आदेश के नियम 20 में यथा अनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य नहीं है तो वह उस अर्जी को खारिज कर सकेगा या ऐसा कोई समुचित आदेश पारित कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

* * * *

20. किसी निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली प्रत्येक अर्जी न्यायालय के कम से कम पांच न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी और उसके द्वारा उसकी सुनवाई और उसका निपटारा किया जाएगा ।

* * * *

34. इस आदेश या न्यायालय के किसी विशेष आदेश के उपबंधों या निदेशों के अधीन रहते हुए किसी निर्वाचन अर्जी में की प्रक्रिया में यथासंभव निकटतम रूप में न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में उसके समक्ष की कार्यवाहियों में की प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा ।"

75. उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 का नियम 13 भी, जो विद्यमान नियम 13 के 20 दिसंबर, 1997 से अंतःस्थापन से पूर्व विद्यमान था, नियम 13 द्वारा अनुध्यात 'प्रारंभिक सुनवाई' की यथार्थ परिधि के प्रभावी अवधारण हेतु यहां नीचे उद्धृत किया जा सकता है :–

*"13. अर्जी पेश किए जाने पर, ऐसा चैंबर न्यायाधीश या रजिस्ट्रार, जिसके समक्ष उसे पेश किया जाता है, अर्जी की तामील के लिए और उसके विज्ञापन के लिए ऐसे निदेश दे सकेगा, जो वह उचित समझे और अर्जी की सुनवाई के लिए समय भी नियत कर सकेगा ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"13. Upon the presentation of the petition, the Judge in Chambers, or the Registrar, before whom, it is presented, may give such directions for service of the petition and advertisement thereof as he thinks proper and also appoint a time for the hearing of the petition."

76. इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए कि कोई निर्वाचन अर्जी नियम 20 के अधीन नियमित सुनवाई किए जाने योग्य है या नहीं, वर्तमान रूप में नियम 13 के 20 दिसंबर, 1997 से अंतःस्थापन किए जाने तक उच्चतम न्यायालय नियमों में प्रारंभिक सुनवाई के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया था । आदेश 39 के नियम 34 में यह उपबंधित है कि किसी निर्वाचन अर्जी में की प्रक्रिया में यथासंभव निकटतम रूप में उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में उसके समक्ष की कार्यवाहियों में की प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा । उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में की कार्यवाहियों को लागू प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय नियमों के भाग 3 के आदेश 23 में अंतर्विष्ट हैं । आदेश 23 के नियम 1 में वादपत्र द्वारा कोई वाद संस्थित किए जाने के बारे में अनुध्यात है । आदेश 23 के नियम 6 में उपबंधित है कि किसी विधिमान्य वादपत्र की अपेक्षाओं पर विचार करने के पश्चात् किसी वादपत्र को उस दशा में नामंजूर कर दिया जाएगा : –

(क) जहां उसमें कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं किया गया है ;

(ख) जहां वादपत्र के कथन से यह प्रतीत होता है कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है ।

77. प्रकथनों को पूरा करने के लिए यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि नियमों के भाग 3 के अन्य उपबंध ऐसी प्रक्रिया के बारे में हैं जो आदेश 23 के नियम 1 के अधीन फाइल किए गए किसी वाद का निपटारा करने के लिए लागू होगी और उसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित के लिए उपबंध किया गया है : –

(क) समनों का जारी किया जाना और उनकी तामील (आदेश 24) ;

(ख) लिखित कथन में के दावे और प्रतिदावे (आदेश 25) ;

(ग) प्रकटीकरण और निरीक्षण (आदेश 27) ;

(घ) साक्षियों को समन किया जाना और उनकी हाजिरी (आदेश 29);

(ङ) वाद की सुनवाई (आदेश 31) ।

78. आदेश 23 का नियम 6, जिसकी ऊपर अवेक्षा की गई है, नियम 13, जो मूल रूप से विद्यमान था, के साथ नियमों का भाग था । अन्य

शब्दों में, प्रारंभिक सुनवाई का उपबंध किए जाने संबंधी नए नियम 13 का अंतःस्थापन, आदेश 23 के नियम 6 के उपबंधों की विद्यमानता और आदेश 23 के नियम 6 में उल्लिखित दोनों आधारों पर किसी वाद को नामंजूर करने और वाद (जिसके अंतर्गत निर्वाचन अर्जी भी है) को खारिज करने की शक्ति की उपलभ्यता के होते हुए भी किया गया था । अतः आदेश 39, नियम 13 के अधीन प्रारंभिक सुनवाई में न्यायालय से किसी विशिष्ट कानूनी अधिनियमिति को ध्यान में रखते हुए निर्वाचन अर्जी में किए अभिवचनों या उसकी संधार्यता के प्रश्न पर केवल वाद हेतुक के प्रकटन या अप्रकटन के तथ्य पर विचार करने के अतिरिक्त कुछ और बातों पर भी विचार करने की अपेक्षा होगी । ऐसी अतिरिक्त जांच, जिसमें स्पष्ट रूप से ऐसे विषयों को अपवर्जित किया जाना चाहिए, जो नियम 20 के अधीन नियमित सुनवाई के अधिकार क्षेत्र में आते हैं, की अपेक्षा आदेश 39 के नियम 13 के अधीन प्रारंभिक सुनवाई में की जाएगी । ऐसी जांच के दौरान न्यायालय को अपना यह समाधान कर लेना चाहिए कि यद्यपि निर्वाचन अर्जी में ऐसे किसी स्पष्ट वाद हेतुक का प्रकटन किया गया है और विचारणीय विवाद्यक(कों) को उठाया गया है, तथापि, उठाए गए विवाद्यकों का विचारण वहां तक आवश्यक या न्यायोचित नहीं होगा, जहां तक यदि उन संपूर्ण तथ्यों पर, जिनका अर्जीदार ने अवलंब लिया है, साबित मान लिया जाए, तो भी निर्वाचन के परिणाम में कोई हस्तक्षेप करने की गुंजाइश नहीं होगी । केवल ऐसी स्थिति में ही निर्वाचन अर्जी में प्रारंभिक सुनवाई की बाधा को पार करने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए । यदि ऐसा समाधान नहीं हो सकता है तो नियमों के भाग 3 के उपबंधों के अनुसार आदेश 39 के नियम 20 के अधीन निर्वाचन अर्जी की नियमित सुनवाई प्रारंभ करने के लिए मंजूर किया जाना चाहिए । मेरी राय में नियमों के आदेश 39 के नियम 13 के अधीन प्रारंभिक सुनवाई का क्षेत्र और प्रविषय उपर्युक्त ही है और पक्षकारों द्वारा उठाए गए प्रश्नों का उत्तर इस प्रक्रम पर, पूर्वोक्त प्रतिरोधों के भीतर ही दिया जाना चाहिए ।

79. सर्वप्रथम, सदन के नेता और कांग्रेस दल के नेता के पद से संबंधित विवाद्यक पर विचार किया जाए । संसद् में मान्यताप्राप्त दलों तथा समूहों के नेता तथा मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) अधिनियम, 1998 और उसके अधीन विरचित नियमों के उपबंधों के अधीन सदन के नेता या सदन में विधायिका दल के नेता के लिए, यदि वह संघ का कोई मंत्री है (वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी संघ मंत्रिमंडल का सदस्य था) तो ऐसे किसी पद के

धारक को संदेय सम्बलम् और परिलब्धियों के अतिरिक्त, कोई पारिश्रमिक अनुध्यात नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, इन दोनों पदों में से कोई भी पद अनुच्छेद 58(2) के अधीन यथापेक्षित भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन नहीं है जिससे किसी ऐसे पद के धारक के प्रति उसके अधीन अनुध्यात निरर्हता उपगत हो सके । प्रश्नगत दोनों ही पद लोक सभा से संबंधित पद हैं । उसका कोई पदधारी, यथास्थिति, या तो निर्वाचित हुआ होना चाहिए या सदन में उसकी सदस्यता या मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में उसकी स्थिति के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया होना चाहिए । अतः, जहां तक पूर्वोक्त पदों का संबंध है, निर्वाचन अर्जी में, नियमों के आदेश 39 के नियम 20 के अधीन विस्तृत सुनवाई के लिए किसी विचारणीय विवाद्यक को प्रकट नहीं किया है ।

80. अगला प्रश्न भारतीय सांख्यिकी संस्थान परिषद्, कोलकाता के अध्यक्ष के पद के संबंध में है । क्या उक्त पद के साथ कोई पारिश्रमिक और/या परिलब्धियां जुड़ी हुई हैं या क्या वह संघ की सरकार के नियंत्रणाधीन है और यह प्रश्न भी कि क्या प्रत्यर्थी ने 20 जून, 2012 को उक्त पद से त्यागपत्र दे दिया था, सभी तथ्य संबंधी प्रश्न हैं, जो विवादग्रस्त हैं, अतः इनका समाधान ऐसे साक्ष्य के आधार पर ही किया जा सकता है, जो पक्षकारों द्वारा दिए जाएं । अतः, न्यायालय को उक्त किसी भी ऐसे विवाद्यक पर विचार उस प्रक्रम से नहीं करना होगा, जो आदेश 39, नियम 13 के अधीन वर्णित है । इसके बजाय, वर्तमान मामले में, हम इस आधार पर कि प्रश्नगत पद एक ऐसा लाभ का पद है, जो प्रत्यर्थी सुसंगत तारीख को धारण किए हुए था (तथापि, ऐसे तथ्य नियमित सुनवाई के दौरान, यदि ऐसा अवसर उद्भूत होता है, साबित किए जाने होंगे) और उस धारणा के आधार पर यह अवधारित करने को अग्रसर हो सकते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 58(2) के उपबंधों को देखते हुए क्या अभी भी प्रत्यर्थी का निर्वाचन इस आधार पर कि प्रत्यर्थी का नामनिर्देशन पत्र गलत ढंग से स्वीकार किया गया था, शून्य नहीं है, जैसा प्रत्यर्थी द्वारा दावा किया गया है । इस संबंध में विनिर्दिष्ट विवाद्यक, जिस पर विचार किया जाना है, यह है कि क्या अध्यक्ष, आई. एस. आई., कोलकाता के पद को यथासंशोधित संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 के उपबंधों के आधार पर किसी निरर्हता से छूट प्रदान की गई है ।

81. ऊपर उपदर्शित विवाद्यक की प्रभावशाली परीक्षा के लिए संविधान

के अनुच्छेद 58, अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 के उपबंधों की विस्तृत अवेक्षा करना और उन पर विचार करना अपेक्षित होगा । अतः, उक्त उपबंधों को निम्नलिखित रूप से उद्धृत किया जाता है :–

"**अनुच्छेद 58 – राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए अर्हताएं –** (1) कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह –

(क) भारत का नागरिक है,

(ख) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका है, और

(ग) लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित है ।

(2) कोई व्यक्ति, जो भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है, राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण – इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण कोई लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल [***][1] है अथवा संघ का या किसी राज्य का मंत्री है ।

अनुच्छेद 84 – संसद् की सदस्यता के लिए अर्हता – कोई व्यक्ति संसद् के किसी स्थान को भरने के लिए चुने जाने के लिए अर्हित तभी होगा जब –

[(क) वह भारत का नागरिक है और निर्वाचन आयोग द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्ररूप के अनुसार शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है ;][2]

(ख) वह राज्य सभा में स्थान के लिए कम से कम तीस वर्ष की आयु का और लोक सभा में स्थान के लिए कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का है ; और

---

[1] संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 की धारा 29 और अनुसूची द्वारा "या राजप्रमुख या उप-राजप्रमुख" शब्दों का लोप किया गया ।

[2] संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 की धारा 3 द्वारा खंड (क) के स्थान पर (5.9.1963 से) प्रतिस्थापित ।

(ग) उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं हैं जो संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस निमित्त विहित की जाएं ।

अनुच्छेद 102 – सदस्यता के लिए निरर्हताएं – (1) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा –

(क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है ;

(ख) यदि वह विकृतचित्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ;

(ग) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया है ;

(घ) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुशक्ति को अभिस्वीकार किए हुए है ;

(ङ) यदि वह संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है ।

[**स्पष्टीकरण** – इस खंड के प्रयोजनों के लिए,][1] कोई व्यक्ति केवल उस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है ।

[(2) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा यदि वह दसवीं अनुसूची के अधीन इस प्रकार निरर्हित हो जाता है ।][2]

82. अनुच्छेद 58(1)(ग) में यह अपेक्षित है कि राष्ट्रपतीय पद का

---

[1] संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 की धारा 3 द्वारा (1.3.1985 से) "(2) इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 की धारा 3 द्वारा (1.3.1985 से) अंतःस्थापित ।

अभ्यर्थी लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित होना चाहिए । क्या इससे यह अभिप्रेत होता है कि जो कोई अनुच्छेद 84 के अधीन लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित है और अनुच्छेद 102 के अधीन किसी निरर्हता से ग्रस्त नहीं है, वह स्वतः ही राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने का पात्र बन जाएगा ? दूसरे शब्दों में, क्या अनुच्छेद 58, अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 के उपबंधों में कोई सामूहिक और समरूपी स्कीम परिकल्पित है ?

83. अनुच्छेद 58(1)(ख) के अधीन राष्ट्रपतीय पद के अभ्यर्थी द्वारा पैंतीस वर्ष की आयु पूरी की गई होनी चाहिए । साथ ही, अनुच्छेद 58(1)(ग) के अधीन ऐसा व्यक्ति लोक सभा का सदस्य होने के लिए अर्हित होना चाहिए । अनुच्छेद 84(ख) के अधीन किसी अभ्यर्थी को लोक सभा में निर्वाचन के लिए कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, लोक सभा का सदस्य होने के लिए अर्हित, किंतु पैंतीस वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन हेतु अभ्यर्थी होने के लिए अर्हित नहीं होगा । इसी प्रकार संसद् (जिसमें लोक सभा भी है) की सदस्यता हेतु अर्हित होने के लिए किसी अभ्यर्थी को विहित प्ररूप के अनुसार शपथ लेनी होगी या प्रतिज्ञान करना होगा । अनुच्छेद 58 द्वारा राष्ट्रपतीय अभ्यर्थी के लिए ऐसी कोई शर्त या अनुबंध को आज्ञापक नहीं बनाया गया है । जहां तक अनुच्छेद 102(1)(क) का संबंध है, यद्यपि लाभ का पद धारण करना संसद् के प्रत्येक सदन के सदस्य के रूप में निर्वाचन के लिए या उसका सदस्य होने के लिए निरर्हता है तो भी ऐसी किसी निरर्हता का संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा अभिलोपन किया जा सकता है । अनुच्छेद 58(2) के अधीन, यद्यपि ऐसी निरर्हता (लाभ का कोई पद धारण करने के आधार पर) किसी राष्ट्रपतीय अभ्यर्थी के प्रति उपगत होती है तो भी ऐसी किसी निरर्हता को दूर करने हेतु संसद् को कोई शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 58 और अनुच्छेद 102, दोनों के स्पष्टीकरणों में ऐसे उपबंध अंतर्विष्ट हैं, जिनके आधार पर कतिपय पदों को लाभ का पद नहीं समझा जाएगा । संविधान के दोनों उपबंधों के बीच समानताएं और अंतर इतने सुस्पष्ट हैं कि उनकी अनदेखी या उपेक्षा नहीं की जा सकती है । ऐसी किसी स्थिति में, जहां अनुच्छेद 102(1)(क) संसद् को, लाभ का कोई पद धारण करने के आधार पर संसद् का सदस्य होने के लिए उपगत निरर्हता को दूर करने हेतु कोई विधि अधिनियमित करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से सशक्त करता है, वहीं अनुच्छेद 58 में ऐसे किसी उपबंध के अभाव में

किसी समेकित सांविधानिक स्कीम को समझने के लिए अनुच्छेद 58 का अनुच्छेद 102 के साथ परिशीलन संभव नहीं होगा । इस मत को ध्यान में रखते हुए कि संविधान की भाषा को उसके साधारण और सहज अभिप्राय के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए, जिससे उसका उस रूप में अर्थान्वयन किया जा सके जिससे उसका सही विधायी आशय निकलता हो, अनुच्छेद 58 को अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 से स्वतंत्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और दोनों सांविधानिक उपबंधों के उद्देश्य को एक दूसरे से पृथक् रूप से समझना होगा । वास्तव में, ऐसा मत **बाबूराव पटेल** बनाम **डा. जाकिर हुसैन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त पूर्वतर राय में अभिव्यक्त किया गया है, जिसे इसमें केवल दोहराया गया है ।

84. उपर्युक्त विचार-विमर्श का वास्तविक परिणाम यह है कि जहां तक राष्ट्रपति पद के निर्वाचन का संबंध है, संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959, 2006 के संशोधन अधिनियम सं. 31 द्वारा यथासंशोधित, लागू नहीं होता है । लाभ का पद धारण करने के कारण राष्ट्रपतीय पद के प्रति अभ्यर्थी द्वारा उपगत निरर्हता को उक्त अधिनियम के उन उपबंधों द्वारा, जो संसद् सदस्य के रूप में चुने जाने या होने अथवा रहने के लिए निरर्हता को दूर करने के बारे में है, दूर नहीं किया जाता है । अतः यदि यह मान भी लिया जाए कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अध्यक्ष का पद लाभ का कोई पद है और प्रत्यर्थी ने तात्विक तारीख (तारीखों) को उक्त पद धारण किया हुआ था तो भी जहां तक निर्वाचन के परिणाम का संबंध है, उसके प्रत्यर्थी के प्रति प्रतिकूल परिणाम सामने आने की संभावना है । अतः उक्त तथ्यों को निर्वाचन अर्जीदार द्वारा साबित किया जाना अपेक्षित होगा । ऐसा कोई निष्कर्ष कि वर्तमान मामले में नियमित सुनवाई करना एक व्यर्थ की कवायद या कोरी औपचारिकता होगी, नहीं निकाला जा सकता, जिससे कि उसे छोड़ दिया जाए और निर्वाचन अर्जी को आदेश 39 के नियम 13 के अधीन उसकी प्रारंभिक सुनवाई के प्रक्रम पर ही बंद कर दिया जाए । अतः उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के भाग 3 के भिन्न-भिन्न उपबंधों में जो उपबंधित है, उसके अनुसार निर्वाचन अर्जी आदेश 39 के नियम 20 के अधीन नियमित सुनवाई योग्य है ।

न्या. चेलामेश्वर :

85. मुझे भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति और अपने न्यायबंधु

---

[1] [1968] 2 एस. सी. आर. 133.

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, दोनों, के निर्णयों का परिशीलन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । मैं विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष से सहमत होने में असमर्थ हूं कि वर्तमान निर्वाचन अर्जी नियमित सुनवाई के योग्य नहीं है । मैं असहमति से संबंधित अपने कारणों को शीघ्र ही सुस्पष्ट करूंगा ।

86. खेद है कि मैं माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त बहुमत की राय से पूरी तरह सहमत नहीं हूं ।

87. वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत अभिवाकों और निवेदनों का माननीय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के निर्णय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, अतः, मेरा उन्हें पुनः दोहराने का विचार नहीं है ।

88. वह प्रक्रिया जिसका, निर्वाचन अर्जी में, जिसमें कि भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रत्यर्थी के निर्वाचन को प्रश्नगत किया गया है, अनुसरण किया जाना अपेक्षित है, संविवाद की विषय-वस्तु है । इस देश में विधि का यह चिरकालिक स्थापित सिद्धांत है कि संविधान के अधीन सृजित विभिन्न निकायों के निर्वाचनों को समुचित विधान द्वारा बनाई गई विधि के अनुसार ही, प्रश्नगत किया जा सकता है, अन्यथा नहीं । अनुच्छेद 329(ख) में यह घोषित किया गया है कि "संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए (जिसे इसमें इसके पश्चात् सामूहिक रूप से 'विधायी निकाय' कहा गया है) कोई निर्वाचन ऐसी निर्वाचन अर्जी पर ही प्रश्नगत किया जाएगा, जो ऐसे प्राधिकारी को और ऐसी रीति से प्रस्तुत की गई है जिसका समुचित विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंध किया जाए, अन्यथा नही" । अनुच्छेद 71 इस प्रकार है :–

> "**71. राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त विषय** –(1) राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा ।
>
> (2) यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति के राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया जाता है तो उसके द्वारा, यथास्थिति, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के पालन में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की

तारीख को या उससे पहले किए गए कार्य उस घोषणा के कारण अविधिमान्य नहीं होंगे ।

(3) इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त किसी विषय का विनियमन संसद् विधि द्वारा कर सकेगी ।

(4) राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में किसी व्यक्ति के निर्वाचन को उसे निर्वाचित करने वाले निर्वाचकगण के सदस्यों में किसी भी कारण से विद्यमान किसी रिक्ति के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।"

इसी प्रकार, अनुच्छेद 71 में यह घोषित किया गया है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा । अनुच्छेद 71(3) में यह अनुध्यात है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित या संसक्त किसी विषय का विनियमन संसद्, विधि द्वारा, कर सकेगी और ऐसा विनियमन संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए होगा । दूसरे शब्दों में, यद्यपि संविधान के अधीन विधायी निकायों से तात्पर्यित विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए मंच (न्यायालय) का अवधारण समुचित विधान-मंडल द्वारा किया जाना अपेक्षित होता है, तथापि, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से तात्पर्यित विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए मंच संविधान द्वारा इस न्यायालय को नियत किया गया है । जबकि अन्य विभिन्न मामलों का जैसे कि वे आधार जिन पर ऐसे निर्वाचनों को चुनौती दी जा सकेगी, वह प्रक्रिया जिसका कि किसी निर्वाचन संबंधी विवाद में अनुसरण किया जाना अपेक्षित होता है, उपबंध, विधायी निकायों के सदस्यों की दशा में, समुचित विधान-मंडल द्वारा, विधि द्वारा, और राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति की दशा में - केवल संसद् द्वारा किया जाना अपेक्षित होता है । विधायी निकायों के सदस्यों से तात्पर्यित निर्वाचन संबंधी विवादों के संदर्भ में, ऐसे मामलों के लिए उपबंध करने का प्राधिकार अनुच्छेद 329, सातवीं अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 11क को देखते हुए समुचित विधान-मंडल में निहित है । इसी प्रकार, अनुच्छेद 246(1) और सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 72 के साथ पठित अनुच्छेद 71(3) के आधार पर ऐसी शक्ति अनन्य रूप से संसद् में निहित है ।

89. ऐसी शक्ति का प्रयोग करते हुए, संसद् द्वारा राष्ट्रपतीय और

उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुगम निर्देश के लिए 'निर्वाचन अधिनियम' कहा गया है) अधिनियमित किया गया था । उक्त अधिनियम का भाग 3 निर्वाचन संबंधी विवादों के बारे में है । धारा 14 में यह घोषित किया गया है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को प्रश्नगत करने का ढंग यह है कि इस न्यायालय में निर्वाचन अर्जी पेश की जाए । धारा 14 इस प्रकार है :–

> "**14क. अर्जियों का पेश किया जाना** – (1) निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी धारा 18 की उपधारा (1) में और धारा 19 में विनिर्दिष्ट आधारों में से एक या अधिक आधारों पर ऐसे निर्वाचन के किसी अभ्यर्थी द्वारा, या –
>
> (i) राष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, बीस या अधिक निर्वाचकों द्वारा संयुक्त अर्जीदारों के रूप में ;
>
> (ii) उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, दस या अधिक निर्वाचकों द्वारा संयुक्त अर्जीदारों के रूप में,
>
> उच्चतम न्यायालय में पेश की जा सकेगी ।
>
> (2) ऐसी कोई अर्जी उस घोषणा के, जिसमें धारा 12 के अधीन निर्वाचन में निर्वाचित अभ्यर्थी का नाम हो, प्रकाशन की तारीख के पश्चात् किसी भी समय पेश की जा सकेगी किंतु ऐसे प्रकाशन की तारीख से तीस दिनों के पश्चात् पेश नहीं की जा सकेगी ।"

धारा 14क में यह विहित है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को केवल अधिनियम की धारा 18(1) और धारा 19 में विनिर्दिष्ट आधारों पर ही प्रश्नगत किया जा सकता है । इसमें उन व्यक्तियों को भी विनिर्दिष्ट किया गया है जो ऐसे किसी प्रश्न को उठाने के लिए प्राधिकृत हैं । इसमें प्रश्न उठाने का अधिकार केवल दो प्रवर्गों के लोगों तक सीमित किया गया है – (1) ऐसे निर्वाचन में के अभ्यर्थी ; (2) राष्ट्रपति की दशा में बीस या अधिक निर्वाचक और उपराष्ट्रपति की दशा में दस या अधिक निर्वाचक । उक्त धारा में ऐसी कोई निर्वाचन अर्जी पेश करने के लिए तीस दिन की परिसीमा नियत की गई है जिसकी गणना उसकी धारा 12 के अधीन अनुध्यात घोषणा के प्रकाशन की तारीख से की जाएगी । यद्यपि धारा 16 में उन अनुतोषों को नियत किया गया है जिनका कि किसी निर्वाचन अर्जी में दावा किया जा सकता है, तथापि, धारा 15 में निम्नलिखित उपबंध किया गया है :–

> "**15. अर्जियों के प्ररूप, इत्यादि और प्रक्रिया** – इस भाग के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए यह है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन बनाए गए नियम [चाहे वे राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन (संशोधन) अधिनियम, 1977 के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् बनाए गए हों] निर्वाचन अर्जियों के प्ररूप का, उस रीति का, जिसमें उन्हें पेश किया जाना है, उन व्यक्तियों का, जो इसके पक्षकार बनाए जाने हैं, उससे संबंधित अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का और उन परिस्थितियों का विनियमन कर सकेंगे जिनमें अर्जियों का शमन हो जाएगा या जिनमें वे वापस ली जा सकेंगी और जिनमें नए अर्जीदार प्रतिस्थापित किए जा सकेंगे और वे खर्चे के लिए प्रतिभूति दिए जाने की अपेक्षा कर सकेंगे ।"

धारा 15 से यह विदित होता है कि संसद् का तात्पर्य इस न्यायालय को निर्वाचन अर्जियों के विभिन्न पहलुओं से जैसे कि (1) उस रीति से, जिसमें अर्जियों को पेश किया जाना होगा ; (2) उन व्यक्तियों से, जिन्हें इनमें पक्षकार बनाया जाना अपेक्षित है; (3) उस प्रक्रिया से, जिसे निर्वाचन अर्जियों के संचालन में अपनाया जाएगा ; (4) उन परिस्थितियों से, जिनमें अर्जियों का शमन हो जाएगा या जिनमें उन्हें वापस लिया जा सकेगा ; और उन परिस्थितियों से, जिनमें अर्जीदार प्रतिस्थापित किए जा सकेंगे और वे खर्चों के लिए प्रतिभूति दिए जाने की अपेक्षा कर सकेंगे, संबंधित नियम बनाए जाने के लिए प्राधिकृत करने का है । इसी प्रकार, विधायी निकायों में से किसी एक निकाय के किसी सदस्य के निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली निर्वाचन अर्जी के संदर्भ में ऐसी प्रक्रिया का संसद् द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन बहुत ही सावधानीपूर्वक उपबंध किया गया है ।

90. निर्वाचन अधिनियम की धारा 14(2) और धारा 15, दोनों ही, जहां तक उनका तात्पर्य राष्ट्रपति के निर्वाचन से तात्पर्यित विवादों के न्यायनिर्णयन के संबंध में इस न्यायालय में क्रमशः अधिकारिता निहित करने और उसे नियम बनाने के लिए प्राधिकृत करने का है, मेरी राय में अतिरेक (अनावश्यक) है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 71 और अनुच्छेद 145 में पहले ही इस संबंध में अभिव्यक्त रूप से उपबंध किया हुआ है ।

91. संविधान के भाग 5 के अध्याय 4 में इस न्यायालय की स्थापना, अधिकारिता आदि के संबंध में उपबंध किया गया है । इस न्यायालय की

आरंभिक अधिकारिता संविधान के अनुच्छेद 131 और अनुच्छेद 32 से उद्‌भूत होती है । उक्त भाग में आने वाले विभिन्न अन्य अनुच्छेदों द्वारा इस न्यायालय में सिविल और दांडिक, दोनों, अपीली अधिकारिता निहित की गई है । संविधान का अनुच्छेद 138 निम्न प्रकार है :–

> "**138. उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता की वृद्धि** – (1) उच्चतम न्यायालय को संघ सूची के विषयों में से किसी के संबंध में ऐसी अतिरिक्त अधिकारिता और शक्तियां होंगी जो संसद् विधि द्वारा प्रदान करे ।
>
> (2) यदि संसद् विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय द्वारा ऐसी अधिकारिता और शक्तियों के प्रयोग का उपबंध करती है तो उच्चतम न्यायालय को किसी विषय के संबंध में ऐसी अतिरिक्त अधिकारिता और शक्तियां होंगी जो भारत सरकार और किसी राज्य की सरकार विशेष करार द्वारा प्रदान करे ।"

संविधान के अनुच्छेद 138 के अधीन संसद् को उच्चतम न्यायालय में अतिरिक्त अधिकारिता, विधि द्वारा, निहित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है । ऐसी अधिकारिता आरंभिक या अपीली हो सकेगी । यह स्वयं सिद्ध है कि विधान-मंडल (इस मामले के संदर्भ में संसद्) को अधिकारिता सृजित करने के प्राधिकार की परिधि के अंतर्गत उन विभिन्न मामलों को विहित करने का प्राधिकार भी आता है जो उस अधिकारिता के आवश्यक अनुषंग हों जैसे कि अधिकारिता - धनीय, राज्यक्षेत्रीय आदि की सीमाएं ; ऐसी अधिकारिता के प्रयोग में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया आदि ।

92. चूंकि संविधान द्वारा ही इस न्यायालय में विभिन्न शीर्षों के अधीन अधिकारिता निहित की गई है और संसद् को अतिरिक्त अधिकारिता का, विधि द्वारा सृजन किए जाने/इस न्यायालय में निहित किए जाने के लिए भी प्राधिकृत किया गया है, अतः संविधान के अधीन इस न्यायालय द्वारा ऐसी अधिकारिता के प्रयोग में, चाहे उस अधिकारिता का स्रोत कुछ भी हो, अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया को विनियमित करने की जरूरत को स्वीकार किया गया है । अतः अनुच्छेद 145 को सम्मिलित किया गया है । अनुच्छेद 145 में यह परिगृहीत किया गया है कि संसद्, विधि द्वारा, ऐसी प्रक्रिया नियत कर सकेगी और ऐसी किसी विधि के न होने पर यह न्यायालय भारत के राष्ट्रपति के अनुमोदन से प्रक्रिया विहित कर सकेगा ।

93. संविधान का अनुच्छेद 145 इस प्रकार है :–

"**145. न्यायालय के नियम आदि** – (1) संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय समय-समय पर, राष्ट्रपति के अनुमोदन से न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया के, साधारणतया, विनियमन के लिए नियम बना सकेगा जिसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं, अर्थात् :–

(क) उस न्यायालय में विधि-व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के बारे में नियम ;

(ख) अपीलें सुनने के लिए प्रक्रिया के बारे में और अपीलों संबंधी अन्य विषयों के बारे में, जिनके अंतर्गत वह समय भी है जिसके भीतर अपीलें उस न्यायालय में ग्रहण की जानी हैं, नियम ;

(ग) भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी का प्रवर्तन कराने के लिए उस न्यायालय में कार्यवाहियों के बारे में नियम ;

(गग) अनुच्छेद 139क के अधीन उस न्यायालय में कार्यवाहियों के बारे में नियम ;

(घ) अनुच्छेद 134 के खंड (1) के उपखंड (ग) के अधीन अपीलों को ग्रहण किए जाने के बारे में नियम ;

(ङ) उस न्यायालय द्वारा सुनाए गए किसी निर्णय या किए गए आदेश का जिन शर्तों के अधीन रहते हुए पुनर्विलोकन किया जा सकेगा उनके बारे में और ऐसे पुनर्विलोकन के लिए प्रक्रिया के बारे में, जिसके अतंर्गत वह समय भी है जिसके भीतर ऐसे पुनर्विलोकन के लिए आवेदन उस न्यायालय में ग्रहण किए जाने हैं, नियम ;

(च) उस न्यायालय में किन्हीं कार्यवाहियों के और उनके आनुषंगिक खर्चे के बारे में, तथा उसमें कार्यवाहियों के संबंध में प्रभारित की जाने वाली फीसों के बारे में नियम ;

(छ) जमानत मंजूर करने के बारे में नियम ;

(ज) कार्यवाहियों को रोकने के बारे में नियम ;

(झ) जिस अपील के बारे में उस न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि वह तुच्छ या तंग करने वाली है अथवा विलंब करने

के प्रयोजन से की गई है, उसके संक्षिप्त अवधारण के लिए उपबंध करने वाले नियम ;

(ञ) अनुच्छेद 317 के खंड (1) में निर्दिष्ट जांचों के लिए प्रक्रिया के बारे में नियम ।

(2) खंड (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अनुच्छेद के अधीन बनाए गए नियम, उन न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या नियत कर सकेंगे जो किसी प्रयोजन के लिए बैठेंगे तथा एकल न्यायाधीशों और खंड न्यायालयों की शक्ति के लिए उपबंध कर सकेंगे ।

(3) जिस मामले में इस संविधान के निर्वचन के बारे में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अतंर्वलित है उसका विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए या इस संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन निर्देश की सुनवाई करने के प्रयोजन के लिए बैठने वाले न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या पांच होगी :

परन्तु जहां अनुच्छेद 132 से भिन्न इस अध्याय के उपबंधों के अधीन अपील की सुनवाई करने वाला न्यायालय पांच से कम न्यायाधीशों से मिलकर बना है और अपील की सुनवाई के दौरान उस न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपील में संविधान के निर्वचन के बारे में विधि का ऐसा सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है जिसका अवधारण अपील के निपटारे के लिए आवश्यक है वहां वह न्यायालय ऐसे प्रश्न को उस न्यायालय को, जो ऐसे प्रश्न को अंतर्वलित करने वाले किसी मामले के विनिश्चय के लिए इस खंड की अपेक्षानुसार गठित किया जाता है, उसकी राय के लिए निर्देशित करेगा और ऐसी राय की प्राप्ति पर उस अपील को उस राय के अनुरूप निपटाएगा ।

(4) उच्चतम न्यायालय प्रत्येक निर्णय खुले न्यायालय में ही सुनाएगा, अन्यथा नहीं और अनुच्छेद 143 के अधीन प्रत्येक प्रतिवेदन खुले न्यायालय में सुनाई गई राय के अनुसार ही दिया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

(5) उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रत्येक निर्णय और ऐसी प्रत्येक राय, मामले की सुनवाई में उपस्थित न्यायाधीशों की बहुसंख्या की सहमति से ही दी जाएगी, अन्यथा नहीं, किन्तु इस खंड की कोई बात किसी ऐसे न्यायाधीश को, जो सहमत नहीं है, अपना विसम्मत

निर्णय या राय देने से निवारित नहीं करेगी ।”

अनुच्छेद 145 के अधीन इस न्यायालय को संविधान द्वारा या विधि द्वारा इस न्यायालय में निहित अपनी आरंभिक या अपीली अधिकारिता के बारे में इस न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया को विनियमित करने हेतु नियम बनाने के लिए प्राधिकृत किया गया है । तथापि, इस न्यायालय का ऐसा प्राधिकार अभिव्यक्त रूप से संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए और भारत के राष्ट्रपति के अनुमोदन के भी अधीन रहते हुए किया गया है ।

94. मेरी राय में, इस दलील का खंडन किया जाना अपेक्षित है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 को देखते हुए विचाराधीन निर्वाचन अर्जी के संचालन में सिविल प्रक्रिया संहिता लागू होती है । क्योंकि ऐसी प्रक्रिया, जिसका कि इस न्यायालय द्वारा संविधान द्वारा या संसद् द्वारा, विधि द्वारा, प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करते समय अनुसरण किया जाना अपेक्षित है, केवल संसद् द्वारा और जब तक ऐसी कोई विधि नहीं बनाई जाती तब तक इस न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा अधिकथित की जा सकती है । सिविल प्रक्रिया संहिता संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि नहीं है बल्कि संविधान के अनुच्छेद 366(10) के अधीन के पद के अर्थांतर्गत एक “विद्यमान विधि” है जिसे बल अनुच्छेद 372 से प्राप्त होता है ।

95. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में ‘संहिता’) ‘सिविल न्यायालयों की प्रक्रिया से संबंधित विधियों का समेकन करने’ संबंधी एक अधिनियमिति है । यद्यपि, इस संहिता में ऐसा कुछ भी अभिव्यक्त नहीं है जो यह घोषित करता हो कि यह संहिता सिविल न्यायालयों को लागू होती है, तथापि, ऐसी घोषणा संहिता की उद्देशिका में अंतर्विष्ट है । उत्तरवर्ती संहिताओं की चिरकालिक स्थापित पद्धति और निर्वचन से सदैव यह समझा जाता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता केवल किसी सिविल न्यायालय की कार्यवाहियों के प्रति लागू होती है । पहली संहिता वर्ष 1859 में बनाई गई थी जिसके स्थान पर उसकी उत्तरवर्ती संहिता (1877 का अधिनियम 10) लाई गई थी । उन विभिन्न अधिनियमितियों का, जिनके द्वारा सिविल न्यायालयों की प्रक्रिया को विनियमित किया जाता था, संक्षिप्त इतिवृत्त संक्षेप में मुल्ला द्वारा लिखित कोड आफ सिविल प्रासिजर, सातवां संस्करण, पृष्ठ 2 पर दिया गया है जो कि निम्न प्रकार है :–

"पहली सिविल प्रक्रिया संहिता 1858 का अधिनियम संख्यांक 8 थी । उसके पूर्व मुफस्सल न्यायालयों की प्रक्रिया 1861 के अधिनियम संख्यांक 10 द्वारा निरसित किए गए विशेष अधिनियमों और विनियमों द्वारा विनियमित की जाती थीं ; और उच्चतम न्यायालय की प्रक्रिया अपने स्वयं के नियमों और आदेशों तथा कतिपय अधिनियमों उदाहरणार्थ 1852 का अधिनियम संख्यांक 17 और 1854 का अधिनियम संख्यांक 6 के अधीन थीं । 1859 की संहिता केवल मुफस्सल न्यायालयों को लागू होती थी । वर्ष 1862 में, उच्चतम न्यायालय और प्रेसिडेंसी नगरों में सदर दीवानी अदालत के न्यायालयों का उच्चतम न्यायालय अधिनियम, 1861 (24 और 25 विक.सी. 104) द्वारा उत्सादन कर दिया गया था और उन न्यायालयों की शक्तियां चार्टर्ड उच्च न्यायालयों में निहित कर दी गई थीं । उच्च न्यायालयों को स्थापित करने संबंधी 1862 के लेटर्स पैटेंट द्वारा उन पर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1859 लागू की गई थी । 1865 के चार्टर में, जिनमें उच्च न्यायालयों को सिविल मामलों में की कार्यवाहियों को विनियमित करने संबंधी नियम बनाने और आदेश करने के लिए सशक्त किया गया है, उनके लिए 1859 की संहिता तथा पश्चात्वर्ती संशोधनकारी अधिनियमों के उपबंधों से, जहां तक संभव हो, मार्गदर्शन लेना अपेक्षित है ।

ऐसे संशोधनकारी अधिनियम है – 1860 का अधिनियम संख्यांक 4, 1861 का अधिनियम संख्यांक 23, 1863 का अधिनियम संख्यांक 9, 1867 का अधिनियम संख्यांक 20, 1870 का अधिनियम संख्यांक 7, 1870 का अधिनियम संख्यांक 14, 1871 का अधिनियम संख्याक 9, 1871 का अधिनियम संख्यांक 32 और 1872 का अधिनियम संख्यांक 7 ।

अगली संहिता थी 1870 का अधिनियम संख्यांक 10, जिसके द्वारा 1859 की संहिता का निरसन किया गया था । इसमें 1878 के अधिनियम संख्यांक 18 और 1870 के अधिनियम संख्यांक 12 द्वारा संशोधन किया गया था, उसके पश्चात् उसे 1882 की संहिता (1882 का अधिनियम संख्यांक 14) द्वारा अधिक्रांत किया गया था । इसमें 1882 के अधिनियम संख्यांक 15, 1885 के अधिनियम संख्यांक 14, 1886 के अधिनियम संख्यांक 4, 1886 के अधिनियम

संख्यांक 10, 1887 के अधिनियम संख्यांक 8, 1888 के अधिनियम संख्यांक 10, 1889 के अधिनियम संख्यांक 13, 1890 के अधिनियम संख्यांक 8, 1892 के अधिनियम संख्यांक 6, 1894 के अधिनियम संख्यांक 5, 1895 के अधिनियम संख्यांक 7 और 1895 के अधिनियम संख्यांक 13 द्वारा संशोधन किया गया था और उसके पश्चात् उसे वर्तमान सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा अधिक्रांत किया गया था ।"

यथार्थ रूप में सिविल न्यायालय कौन-सा होता है, उसे संहिता के अधीन अथवा किसी अन्य अधिनियमिति के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है । ऐसे किसी पद का प्रयोग उन न्यायालयों से भिन्न रूप में किया जाता है, जो कि आपराधिक मामलों में अधिकारिता का प्रयोग करते हैं । संहिता के अधीन 'न्यायालय' शब्द को भी परिभाषित नहीं किया गया है । राजस्व न्यायालयों और लघु वादों से संबंधित विभिन्न विधियों के अधीन गठित न्यायालयों को ऐसे न्यायालय नहीं समझा जाता जिन्हें यह संहिता स्वतः ही लागू होती हो (देखिए : धारा 5, धारा 7 और धारा 8) । 'राजस्व न्यायालय' पद को धारा 5(2) में परिभाषित किया गया है । धारा 5(2) इस प्रकार है :–

"धारा 5(2) : उपधारा (1) में 'राजस्व न्यायालय' से ऐसा न्यायालय अभिप्रेत है जो कृषि प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि के भाटक या लाभों से संबंधित वादों या अन्य कार्यवाहियों को ग्रहण करने की अधिकारिता किसी स्थानीय विधि के अधीन रखता है, किंतु इस संहिता के अधीन ऐसे वादों या कार्यवाहियों का विचारण सिविल प्रकृति के वादों या कार्यवाहियां के रूप में करने के लिए इस संहिता के अधीन आरंभिक अधिकारिता रखने वाला सिविल न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं है ।"

राजस्व न्यायालयों अथवा लघुवाद न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त अधिकारिता की प्रकृति को सिविल अधिकारिता से भिन्न कुछ और प्रकृति का नहीं कहा जा सकता है । इस पर भी विधायिका ने अपने विवेक से संहिता को इन न्यायालयों के प्रति लागू किया जाना उचित नहीं समझा । अतः, अर्जीदार के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री राम जेठमलानी की यह दलील कि संहिता की धारा 141 में अंतर्विष्ट घोषणा को देखते हुए यह संहिता निर्वाचन अधिनियम के अधीन निर्वाचन अर्जी के संचालन के प्रति लागू होती है, मेरी राय में, तर्कसंगत नहीं है । धारा 141 निम्न प्रकार है :–

"141. **प्रकीर्ण कार्यवाहियां** – उस प्रक्रिया का, जो वादों के विषय में इस संहिता में उपबंधित है सिविल अधिकारिता वाले किसी भी न्यायालय में की सभी कार्यवाहियों में वहां तक अनुसरण किया जाएगा जहां तक वह लागू की जा सके ।"

96. ऐसे निष्कर्ष का एक अन्य कारण यह भी है कि अनेक अधिनियमितियों के अधीन चाहे वे संसद् की हों या राज्य विधान-मंडलों की हों, सिविल न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन के संदर्भ में, इस न्यायालय द्वारा निरंतर यह मत अपनाया गया है कि अनुच्छेद 32 के अधीन और अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने वाले इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा संविधान द्वारा उनमें निहित अधिकारिता का प्रयोग किया जाता है और इसलिए इसे ऐसे किसी विधान द्वारा, जो सांविधानिक संशोधन की प्रकृति का न हो, छीना नहीं जा सकता है । तद्द्वारा जो विवक्षित होता है वह यह है कि वे इन विभिन्न अधिनियमितियों में, जो कानून द्वारा सृजित अधिकारिता के वर्जन के प्रति लागू होती हैं, प्रयुक्त ऐसे किसी पद के अर्थांतर्गत साधारण सिविल न्यायालय नहीं हैं । अतः मैं इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकता कि संहिता की धारा 141 के प्रवर्तन के आधार पर यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 71 के अधीन अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते समय संहिता में अंतर्विष्ट प्रक्रिया द्वारा आबद्धकर है ।

97. तब प्रश्न यह रहता है कि वह प्रक्रिया कौन सी है जिसका कि इस न्यायालय द्वारा निर्वाचन अधिनियम के अधीन निर्वाचन संबंधी विवाद का न्यायनिर्णयन करते समय अनुसरण किया जाना अपेक्षित है, इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन अपने प्राधिकार का प्रयोग करने में इस न्यायालय की प्रक्रिया को अपनी आरंभिक और अपीली, दोनों, अधिकारिता के संबंध में विनियमित करने संबंधी उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 नामक नियम बनाए गए हैं, जिन्हें इसमें इसके पश्चात् 'नियम' कहा गया है । जहां तक अधिनियम के अधीन निर्वाचन अर्जियों का संबंध है, यह प्रक्रिया नियमों के भाग 7 के अंतर्गत आने वाले आदेश 39 के अधीन विहित है । उसके नियम 34 में इस प्रकार उपबंधित है :–

"34. इस आदेश या न्यायालय के किसी विशेष आदेश के उपबंधों या निदेशों के अधीन रहते हुए किसी निर्वाचन अर्जी में की

प्रक्रिया में यथासंभव निकटतम रूप में न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में उसके समक्ष की कार्यवाहियों में की प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा ।"

नियम 34 में यह अनुबंधित है कि अधिनियम के अधीन किसी निर्वाचन अर्जी का न्यायनिर्णयन करते समय इस न्यायालय से अपनी आरंभिक अधिकारिता के प्रयोग में इस न्यायालय के समक्ष की कार्यवाहियों को विनियमित करने संबंधी नियमों के भाग 3 के आदेश 22 से आदेश 34 में अंतर्विष्ट प्रक्रिया का (यथासंभव निकटतम रूप में) अनुसरण किया जाना अपेक्षित है । (नियमों के भाग 3 में आने वाले विभिन्न नियमों में इस न्यायालय के समक्ष की ऐसी मूल कार्यवाहियों के प्रति सिविल प्रक्रिया संहिता के कतिपय विनिर्दिष्ट उपबंधों के लागू होने का अभिव्यक्त रूप से उपबंध किया गया है ।) ऐसा कोई अनुबंध अभिव्यक्त रूप से आदेश 39 के अन्य उपबंधों या इस न्यायालय के किसी विशेष आदेश या निदेश के अधीन रहते हुए किया जाता है । यह अनुबंध कि यह न्यायालय इस न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता के अधीन कार्यवाहियों को लागू प्रक्रिया (नियमों का भाग 3) का अनुसरण करने के लिए आबद्धकर है, आदेश 39 के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए किया गया है । दूसरे शब्दों में, यदि भाग 3 में अंतर्विष्ट प्रक्रिया भाग 7 (आदेश 39) में अंतर्विष्ट किन्हीं उपबंधों से असंगत है, तो यह न्यायालय भाग 3 में अंतर्विष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिए आबद्धकर नहीं है । इसके अलावा, आदेश 39 के नियम 34 के अधीन आने वाले " ....या न्यायालय के किसी विशेष आदेश के उपबंधों या निदेशों .." खंड को देखते हुए यह न्यायालय किसी मामले विशेष में आदेश 39 के अधीन अंतर्विष्ट प्रक्रिया का अनुसरण न करने के लिए सदैव ही स्वतंत्र है । उन परिस्थितियों की, जो इस न्यायालय द्वारा ऐसे "विशेष आदेशों या निदेशों" के जारी किए जाने को न्यायोचित ठहराती हैं, जब कभी अपेक्षित हो, पृथक् परीक्षा कराया जाना अपेक्षित होता है ।

98. अतः, प्रश्न यह है कि वह प्रक्रिया क्या है जिसका कि इस न्यायालय द्वारा अधिनियम के अधीन कोई निर्वाचन अर्जी प्राप्त होने पर अनुसरण किया जाना अपेक्षित है ? आदेश 39 के नियम 13 से नियम 15 में उस प्रक्रिया को विहित किया गया है जिसका कि इस न्यायालय द्वारा अनुसरण किया जाना होगा, यदि नियमों के भाग 3 में आने वाले आदेश 24 के नियम 1 में यह आज्ञापक बनाया गया है कि जब कोई वाद इस

न्यायालय को अपनी आरंभिक अधिकारिता में उसका न्यायनिर्णयन किए जाने के लिए पेश किया जाता है तो "प्रतिवादी को हाजिर होने और दावे का उत्तर देने के लिए समन जारी किया जाएगा" । आदेश 39 के नियम 13 में एक भिन्न प्रक्रिया विहित है । यह इस प्रकार है :–

> "अर्जी पेश किए जाने पर उसे प्रारंभिक सुनवाई के लिए तथा अर्जी की तामील संबंधी आदेशों के लिए और उसके ऐसे विज्ञापन के लिए, जो न्यायालय उचित समझे तथा अर्जी की सुनवाई के लिए समय नियत करने के लिए न्यायालय की पांच न्यायाधीशों से मिलकर बनी एक न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा । प्रारंभिक सुनवाई किए जाने पर, यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि यह अर्जी इस आदेश के नियम 20 में यथाअनुध्यात नियमित सुनवाई किए जाने योग्य नहीं है तो वह न्यायालय उस अर्जी को खारिज कर सकेगा या ऐसा कोई समुचित आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे ।"

यहां यह उल्लेखनीय है कि नियम 13, जैसे वह इस समय विद्यमान है, सा. का. नि. संख्यांक 407, तारीख 9 दिसंबर, 1987 द्वारा तारीख 20 दिसंबर, 1997 से प्रतिस्थापित किया गया था, ऐसे प्रतिस्थापन से पूर्व, नियम भिन्न रूप में था ।

99. नियम 13 का परिशीलन करने मात्र से यह उपदर्शित होता है कि अधिनियम के अधीन इस न्यायालय के समक्ष कोई अर्जी सम्यक् रूप से पेश किए जाने पर (1) उसे प्रारंभिक सुनवाई और उस पर आदेश किए जाने के लिए पांच न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा ; (2) ऐसी कोई सुनवाई और आदेश अर्जी की तामील और उसके विज्ञापन के बारे में होंगे, क्योंकि नियम 14 और नियम 15 में क्रमशः यह नियत है कि अधिनियम के अधीन निर्वाचन अर्जी पेश किए जाने की सूचना नियम 14 के अधीन विनिर्दिष्ट विभिन्न व्यक्तियों पर तामील किया जाना अपेक्षित है । उक्त नियम में तामील की पद्धति और रीति का भी उपबंध है । जबकि नियम 15 में यह नियत है कि अधिनियम के अधीन निर्वाचन अर्जी के पेश किए जाने के तथ्य की सुनवाई के लिए नियत की गई तारीख के चौदह स्पष्ट दिनों के पूर्व राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा और उसे अर्जीदार के खर्च पर समाचारपत्रों में भी विज्ञापित किया जाएगा । नियम 14 और नियम 15 इस प्रकार हैं :–

*"**नियम 14** – जब तक कि अन्यथा आदेश न किया जाए, अर्जी के पेश किए जाने की, सूचना की जिसके साथ अर्जी की प्रति संलग्न हो, उसके पेश किए जाने के पांच दिन के भीतर या ऐसे अतिरिक्त अवधि के भीतर, जो न्यायालय अनुज्ञात करे, अर्जीदार या उसके अभिलेख अधिवक्ता, प्रत्यर्थी या प्रत्यर्थियों, निर्वाचन आयोग के सचिव, रिटर्निंग आफिसर और भारत के महान्यायवादी पर तामील की जाएगी । ऐसी तामील व्यक्तिगत रूप से अथवा रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा जैसे न्यायालय का रजिस्ट्रार निदेश दे, की जाएगी । ऐसी तामील के ठीक पश्चात् अर्जीदार या उसका अभिलेख अधिवक्ता रजिस्ट्रार के पास ऐसी तामील के समन और रीति की बाबत एक शपथपत्र फाइल करेगा ।

नियम 15 – जब तक कि, यथास्थिति चैंबर न्यायाधीश या रजिस्ट्रार द्वारा अभिमुक्ति प्रदान न की जाए, अर्जी के पेश किए जाने की सूचना उसकी सुनवाई के लिए नियत की गई तारीख के चौदह स्पष्ट दिनों के पूर्व ऐसी रीति में, जैसे न्यायालय या रजिस्ट्रार निदेश दे, राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी और अर्जीदार अथवा अर्जीदारों के खर्च पर समाचारपत्रों में विज्ञापित की जाएगी ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"Rule 14 – Unless otherwise ordered, the notice of the presentation of the petition, accompanied by a copy of the petition, shall within five days of the presentation thereof or within such further time as the Court may allow, be served by the petitioner or his advocate on record on the respondent or respondents the Secretary to the Election Commission, the Returning Officer and the Attorney General for India. Such service shall be effected personally or by registered post, as the Court or Registrar may direct. Immediately after such service the petitioner or his advocate on record shall file with the Registrar an affidavit of the time and manner of such service.

Rule 15 – Unless dispensed with by the Judge in Chambers or the Registrar as the case may be, notice of the presentation of the petition shall be published in the Official Gazette and also advertised in newspapers at the expense of the petitioner or petitioners fourteen clear days before the date appointed for the hearing thereof in such manner as the Court of the Registrar may direct."

किंतु नियम 14 और नियम 15 में नियत बाध्यताएं अभिव्यक्त रूप से न्यायालय के तत्प्रतिकूल आदेशों के अधीन रहते हुए बनाई गई हैं । इस बात का अवधारण किया जाना है कि नियम 14 और नियम 15 के अधीन विहित सामान्य प्रक्रिया का जिसका कि ऊपर विवेचन किया गया है, किसी मामले विशेष में अनुसरण किया जाना होगा अथवा नहीं, अधिनियम के अधीन किसी निर्वाचन अर्जी को नियम 13 के अधीन अनुध्यात किसी प्रारंभिक सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाना अपेक्षित है अथवा नहीं । नियम 13 में आगे यह नियत है कि [3] ऐसी किसी प्रारंभिक सुनवाई पर यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वह अर्जी नियम 20 के अधीन अनुध्यात किसी नियमित सुनवाई के योग्य नहीं है तो वह न्यायालय या तो उस निर्वाचन अर्जी को खारिज कर सकेगा या ऐसी कोई समुचित आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे ।

100. अतः, आदेश 39 के नियम 13 में आदेश 24 के नियम 1 के अधीन, उस अनुबंध के, जिसमें कि इस न्यायालय के समक्ष कोई मूल वाद के सम्यक् रूप से संस्थित किए जाने के पश्चात् यह आज्ञापक बनाया गया है कि "समन जारी किया जाएगा", तत्प्रतिकूल प्रक्रिया विहित है । इस बात की अवेक्षा करना उपयुक्त है कि यद्यपि आदेश 24 में समन जारी किए जाने की अपेक्षा है, तथापि, आदेश 39 के नियम 14 में यह अनुध्यात है कि केवल निर्वाचन अर्जी के पेश किए जाने की सूचना जारी की जानी होगी । समन और सूचना के बीच विभेद बहुत ही सूक्ष्म किंतु वास्तविक है जो इस निर्णय पर विचार किए जाने की जरूरत और प्रविषय से परे है । मैंने केवल ऊपरवर्णित नियमों की भाषा में जो विभेद है, उसका तथा उल्लिखित विधिक-विभेद की विद्यमानता का ही निरूपण किया है ।

101. उपर्युक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि आदेश 39, नियम 13 के अधीन पांच न्यायाधीशों की उस न्यायपीठ में, जिसके समक्ष अधिनियम के अधीन निर्वाचन अर्जी प्रारंभिक सुनवाई के लिए प्रस्तुत की जाती है, इस बात का विवेकाधिकार निहित किया गया है कि वह इस आशय का निष्कर्ष लेखबद्ध करे कि अर्जी की नियम 14 के अधीन सूचना देने या नियम 15 के अधीन उसका प्रकाशन किए जाने और नियम 20 के अधीन किसी नियमित सुनवाई किए जाने या ऐसा कोई अन्य समुचित आदेश जैसाकि (कदाचित) अर्जी में किसी प्ररूपिक त्रुटि को दूर किए जाने का निदेश दिए जाने संबंधी आदेश किए जाने योग्य है अथवा नहीं । मेरा इस मामले के प्रयोजनार्थ ऐसे "समुचित आदेश" के संपूर्ण प्रविषय और

आयाम की परीक्षा किए जाने का प्रस्ताव नहीं है क्योंकि ऐसा किया जाना आवश्यक नहीं है ।

102. तथापि, यह निर्विवाद्य है कि निर्वाचन अर्जी की सुनवाई करने वाली न्यायपीठ के इस निष्कर्ष को लेखबद्ध करने के कि निर्वाचन अर्जी नियमित सुनवाई किए जाने योग्य नहीं है, अतः उसे खारिज किया जाना अपेक्षित है, विवेकाधिकार का प्रयोग लेखबद्ध किए जाने वाले उन स्पष्ट और तर्कपूर्ण कारणों से विधि में विदित युक्तिसंगत आधारों पर किया जाना चाहिए । क्योंकि केवल ऐसी बाध्यता से ही हमारे संविधान द्वारा न्यायपालिका को प्रदान की गई संरक्षा और उन्मुक्तियों की असाधारण डिग्री का न्यायौचित्य सिद्ध होता है । स्पष्ट और तर्कपूर्ण कारणों पर आधारित तर्कसंगत आधारों के न होने से एक ऐसी प्रचलित भ्रांत धारणा पैदा होगी कि सांविधानिक शासन की यह शाखा भी दूसरी दोनों शाखाओं से कोई अलग नहीं है, अर्थात् ऐसी भ्रांत धारणा पैदा होगी, जो निश्चित रूप से (विधिक पद्धति की) विश्वसनीयता के प्रति प्रेरक नहीं है ।

103. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 का अवलंब लेते हुए श्री राम जेठमलानी ने यह दलील दी कि किसी निर्वाचन अर्जी को केवल उस दशा में जब निर्वाचन अर्जी में वाद हेतुक का प्रकटन न किया गया हो, समन जारी किए जाने के प्रक्रम से पूर्व भी नामंजूर किया जा सकता है । श्री जेठमलानी ने यह दलील दी कि किसी परिस्थिति में यह युक्तियुक्त रूप से दलील नहीं दी जा सकती कि विचाराधीन निर्वाचन अर्जी में कोई विधिमान्य वाद हेतुक का प्रकटन नहीं किया गया है । उन्होंने यह और दलील दी कि यह प्रश्न कि क्या अर्जीदार निर्वाचन अर्जी में उसके द्वारा किए गए विभिन्न अभिकथनों की सत्यता को सिद्ध कर पाएगा अथवा नहीं, नियम 13 के अधीन की गई जांच की विषयवस्तु नहीं हो सकता है बल्कि यह जांच केवल इस बात तक सीमित हो सकती है कि – क्या इन अभिकथनों से, यदि वे साबित किए जाते हैं, ऐसा पर्याप्त वाद हेतुक गठित होगा जो अर्जीदार को ऐसे अनुतोष का, जिसका कि निर्वाचन अर्जी में दावा किया गया है, दावा करने के लिए हकदार बनाता हो ?

104. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी का पक्षकथन यह है कि निर्वाचन अर्जी में किए गए विभिन्न तथ्यात्मक अभिकथनों से, यदि उन्हें सही साबित भी कर दिया जाता है, ऐसा कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं होता है जो अर्जीदार को ऐसे अनुतोष का, जिसका कि निर्वाचन अर्जी में दावा किया गया है, हकदार बनाता हो ।

105. उपर्युक्त परस्पर विरोधी दलीलों की सत्यता की परीक्षा करने के लिए मैं उन परिस्थितियों की परीक्षा करना समुचित समझता हूं जिनके अधीन यह न्यायालय अधिनियम के अधीन की गई निर्वाचन अर्जी को नियम 13 के अधीन प्रत्यर्थी को सूचना जारी किए जाने के पूर्व भी, प्रारंभिक सुनवाई के प्रक्रम पर, खारिज कर सकता है ।

106. मेरी यह राय है कि उन परिस्थितियों की कोई सुविस्तृत सूची देना संभव नहीं है, जिनमें कि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि निर्वाचन अर्जी की नियमित सुनवाई किया जाना अपेक्षित नहीं है बल्कि यह कहा जा सकता है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि निर्वाचन अर्जी कोई निर्णयज विधि संबंधी कार्यवाही नहीं है बल्कि कानून का एक सृजन है, उन कानूनी अपेक्षाओं का, जिनके अधीन निर्वाचन अधिनियम के अधीन किसी निर्वाचन को प्रश्नगत करने का अधिकार सृजित किया जाता है, अनुपालन न किया जाना निश्चित रूप से एक आधार है जिस पर निर्वाचन अर्जी को प्रारंभिक सुनवाई के प्रक्रम पर खारिज किया जा सकता है ।

107. उदाहरणार्थ, निर्वाचन अधिनियम के अधीन किसी निर्वाचन को प्रश्नगत करने का अधिकार केवल ऐसे दो प्रवर्ग के लोगों को प्राप्त है जिसका धारा 14क के अधीन, जिसकी कि पहले ही अवेक्षा की जा चुकी है, उल्लेख किया गया है । ऐसे किसी मामले में जहां कि उस व्यक्ति से, जो निर्वाचन को प्रश्नगत करने का हकदार है, भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा, निर्वाचन अर्जी में किए गए अभिकथनों को विचार में लिए बिना, पेश की जाती है, वहां उसे प्रारंभिक सुनवाई के प्रक्रम पर ही खारिज कर दिया जाना अपेक्षित होता है ।

108. इसी प्रकार, धारा 14क में यह घोषित है कि अधिनियम के अधीन किसी निर्वाचन को केवल धारा 18 और धारा 19 के अधीन विनिर्दिष्ट आधार पर ही प्रश्नगत किया जा सकता है । धारा 18 और धारा 19 इस प्रकार हैं :–

"**18. निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के आधार** – (1) यदि उच्चतम न्यायालय की यह राय है कि –

(क) निर्वाचित अभ्यर्थी या निर्वाचित अभ्यर्थी की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा निर्वाचन में रिश्वत या असम्यक् असर का अपराध किया गया है, अथवा

(ख) निर्वाचन का परिणाम पर –

(i) किसी मत के अनुचित तौर पर लिए जाने या इनकार किए जाने के कारण से, अथवा

(ii) संविधान के या इस अधिनियम के या इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों या किए गए आदेशों के उपबंधों का अनुपालन न किए जाने से, अथवा

(iii) इस तथ्य के कारण कि किसी ऐसे अभ्यर्थी का (निर्वाचित अभ्यर्थी से भिन्न) नामनिर्देशन, जिसने अपनी अभ्यर्थिता वापस नहीं ली है, गलत रूप में स्वीकार किया गया है,

तात्विक रूप से प्रभाव पड़ा है, अथवा

(ग) किसी अभ्यर्थी का नामनिर्देशन गलत रूप से अस्वीकार किया गया है या निर्वाचित अभ्यर्थी का नामनिर्देशन गलत रूप से स्वीकार किया गया है,

तो उच्चतम न्यायालय यह घोषणा करेगा कि निर्वाचित अभ्यर्थी का निर्वाचन शून्य है ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए निर्वाचन में रिश्वत और असम्यक् असर डालने के अपराध के वही अर्थ हैं जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय 9क में हैं ।

19. निर्वाचित अभ्यर्थी से भिन्न अभ्यर्थी को निर्वाचित घोषित किए जाने के आधार – यदि किसी व्यक्ति ने, जिसने निर्वाचन अर्जी पेश की है निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को प्रश्नगत करने के अतिरिक्त, इस घोषणा के लिए दावा किया है कि वह स्वयं या कोई अन्य अभ्यर्थी सम्यक् रूप से निर्वाचित हुआ है और उच्चतम न्यायालय की यह राय है कि वास्तव में अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी ने विधिमान्य मतों में से बहुसंख्यक मत प्राप्त किए हैं तो उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी का निर्वाचन शून्य घोषित करने के पश्चात्, यथास्थिति, अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित करेगा :

परंतु यदि यह साबित हो जाता है कि ऐसे अभ्यर्थी का निर्वाचन उस दशा में शून्य होता जिसमें वह निर्वाचित अभ्यर्थी रहता और उसके निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी पेश की गई होती तो

ऐसे अर्जीदार या अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित नहीं किया जाएगा ।"

अतः, यदि निर्वाचन अर्जी में किए गए अभिकथनों को भले ही सत्य मान लिया जाए तो भी वे कोई एक या कुछ आधार गठित नहीं करते जिन पर अधिनियम के अधीन किसी निर्वाचन को चुनौती दी जा सके, यह निश्चित रूप से एक आधार होगा जो इस न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचने में समर्थ बनाता है कि निर्वाचन अर्जी किसी नियमित सुनवाई किए जाने के योग्य नहीं है ।

109. इसी पृष्ठभूमि में इस प्रश्न का कि वर्तमान निर्वाचन अर्जी प्रत्यर्थी को सूचना जारी किए बिना भी खारिज किया जाना अपेक्षित है अथवा नहीं, अवधारण किया जाना अपेक्षित है ?

110. प्रत्यर्थी – जो इस न्यायालय के समक्ष उसे इस न्यायालय द्वारा सूचना जारी किए जाने का निदेश दिए जाने के पूर्व ही हाजिर हो गया था – की दलीलों में संपूर्णतया इस बात पर जोर दिया गया है कि निर्वाचन अर्जी में किसी ऐसे वाद हेतुक का प्रकटन नहीं किया गया है जिसके कारण नियम 14 और नियम 15 के अधीन अनुध्यात सूचना का जारी किया जाना या प्रकाशन तथा आदेश 39 के नियम 20 के अधीन अनुध्यात कोई नियमित सुनवाई किया जाना आवश्यक हो ।

111. प्रत्यर्थी की इस दलील को स्वीकार या नामंजूर करने के लिए उन आधारों की परीक्षा करना आवश्यक है जिन पर प्रत्यर्थी के निर्वाचन को चुनौती दी गई है ।

112. वह आधार, जिस पर प्रत्यर्थी के निर्वाचन को चुनौती दी गई है, केवल यह है कि वह भारत के राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र नहीं था । ऐसा आधार उन आधारों में से एक आधार है जिस पर प्रत्यर्थी के भारत के राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को चुनौती दी जा सकती है क्योंकि धारा 18(1)(iii) में यह अनुबंधित है कि यदि न्यायालय की यह राय है कि सफल अभ्यर्थी के नामनिर्देशन को गलत तौर पर स्वीकार किया गया है, तो यह न्यायालय उस निर्वाचन को शून्य घोषित करेगा ।

113. अगला प्रश्न यह है कि क्या निर्वाचन अर्जी में ऊपरवर्णित आधार को सिद्ध करने के लिए ऐसे आवश्यक अभिकथन अंतर्विष्ट हैं जिन पर निर्वाचन को चुनौती दी जा सकती है ? वे अभिकथन, जो इस बारे में निर्वाचन अर्जी में प्रकट किए गए हैं, दो प्रकार के हैं और माननीय मुख्य

न्यायमूर्ति तथा मेरे न्यायबंधु न्या. रंजन गोगोई के निर्णयों में उन्हें पर्याप्त रूप से प्रतिपादित किया गया है । अतः मेरा उन्हें दोहराने का कोई विचार नहीं है ।

114. प्रत्यर्थी ने इस तथ्य का कोई प्रतिवाद नहीं किया है कि वह भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कोलकाता का अध्यक्ष था और लोक सभा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इंडियन नेशनल कांग्रेस) नामक राजनीतिक दल का नेता भी था तथापि, प्रत्यर्थी ने यह सुस्पष्ट पक्ष अपनाया कि उसने निर्णायक तारीख के पूर्व अर्थात् नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा की तारीख (2 जुलाई, 2012) को ऊपरवर्णित दोनों पदों से त्यागपत्र दे दिया था इसी पक्ष-कथन का निर्वाचन अर्जीदार द्वारा अर्जी में एक सुविस्तृत अभिवाक् करके पुरजोर प्रतिवाद किया है कि प्रत्यर्थी वस्तुतः निर्णायक तारीख तक ऊपरवर्णित पदों को धारण करने से प्रविरत नहीं हुआ था ।

115. प्रत्यर्थी ने यह भी सुस्पष्ट पक्ष अपनाया कि यद्यपि उसने निर्णायक तारीख तक ऊपरवर्णित दोनों पदों से त्याग पत्र दे दिया था, तथापि, ऊपरवर्णित पदों में से कोई भी पद ऐसा नहीं है जिसको धारण करने से वह प्रश्नगत निर्वाचन लड़ने से अपात्र हो जाए ।

116. वह विवाद्यक, जिसकी कि नियम 13 के अधीन प्रारंभिक सुनवाई पर आदेश के प्रयोजन के लिए परीक्षा किया जाना अपेक्षित है, यह है कि क्या ऊपरवर्णित दोनों पदों में से किसी पद को – **यदि वे वस्तुतः निर्णायक तारीख को धारित किए हुए थे** – धारण करने से प्रत्यर्थी प्रश्नगत निर्वाचन लड़ने के लिए अपात्र हो जाता ? यदि इसका उत्तर 'नहीं' में है, तो यह न्यायालय विचाराधीन निर्वाचन अर्जी को नियम 13 के अधीन खारिज कर सकता है ।

117. इस विवाद्यक का उत्तर, मेरी राय में, इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है कि क्या उक्त दोनों पद लाभ के पद हैं जो विधि में, प्रत्यर्थी को प्रश्नगत निर्वाचन लड़ने के लिए अपात्र बनाते हैं । यह प्रश्न कि क्या प्रत्यर्थी वस्तुतः निर्णायक तारीख को उन पदों को धारण किए हुए था ?, तथ्य का प्रश्न है जो, मेरी राय में, इस प्रक्रम पर जांच की विषयवस्तु नहीं हो सकता ।

118. पहले प्रश्न के उत्तर के लिए हमें सर्वप्रथम अवश्य ही इस बात की परीक्षा करनी चाहिए कि विधि के अधीन वह प्रतिषेध क्या है, जो किसी व्यक्ति को प्रश्नगत निर्वाचन लड़ने के लिए अपात्र बनाता है ।

119. अनुच्छेद 58 में यह उपबंधित है कि –

"**58. राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए अर्हताएं** – (1) कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह –

(क) भारत का नागरिक है,

(ख) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका है, और

(ग) लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित है ।

(2) कोई व्यक्ति, जो भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है, राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण – इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण कोई लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल है अथवा संघ का या किसी राज्य का मंत्री है ।"

120. उपर्युक्त से यह देखा जा सकता है कि भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन उक्त सरकारों में से किसी भी सरकार के नियंत्रण के अधीन या अन्य बातों के साथ-साथ कोई स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन, लाभ का पद धारण करने से ऐसे लाभ के पद को धारण करने वाला व्यक्ति राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन के लिए अपात्र हो जाएगा ।

121. प्रत्यर्थी का प्रतिवाद यह है कि उसके द्वारा धारण किए हुए पदों में से कोई भी पद अनुच्छेद 58(2) के अंतर्गत आने वाला लाभ का पद नहीं है जो कि उसे प्रश्नगत निर्वाचन लड़ने के लिए अपात्र बनाता हो । प्रत्यर्थी के अनुसार, भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कोलकाता के अध्यक्ष के पद को - चाहे वह लाभ का पद है अथवा नहीं [अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन यथा-अनुध्यात संसद् द्वारा बनाई गई एक विधि अर्थात् संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 द्वारा] इस प्रकार घोषित किया गया है कि वह किसी व्यक्ति को संसद् के सदस्य के रूप में चुने जाने या होने के लिए निरर्हित नहीं करता है । अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन प्रदत्त शक्ति के तात्पर्यित प्रयोग में, संसद्, समय-समय पर, विभिन्न अधिनियमितियां बनाती हैं -

उसी श्रृंखला में संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 है, जिसे भी समय-समय पर, एक बार वर्ष 1993 में और बाद में वर्ष 1996 और वर्ष 2006 में, संशोधित किया गया है । उक्त अधिनियम की धारा 3 में यह घोषित किया गया है कि उसमें विनिर्दिष्ट पदों में से कोई भी पद उसके पद के धारक को संसद् के सदस्य के रूप में चुने जाने या होने या रहने के लिए निरर्हित नहीं बनाएगा । धारा 3, जहां तक वह सुसंगत है, निम्नलिखित अनुसार है :–

> "3. **कतिपय लाभ के पद निरर्हित नहीं करेंगे** – एतद्‌द्वारा यह घोषित किया जाता है कि निम्नलिखित पदों में से कोई भी पद, उसके धारक को संसद्-सदस्य चुने जाने या संसद्-सदस्य होने या रहने के लिए वहां तक निरर्हित न करेगा जहां तक कि वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद है, अर्थात् :– ...."

विभिन्न पदों को उक्त धारा के विभिन्न उपखंडों में - उपखंड (क) से (ड) में - ऐसे पदों के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है जो उसके धारक को संसद् का संसद् होने या रहने से निरर्हित नहीं करते हैं । समय-समय पर प्रतिस्थापित इन विभिन्न खंडों का (जो कि मुझे अधिनियम में अविचारित रूप से किए गए अंतःस्थापन उपदर्शित होते हैं) विश्लेषण करने पर यह दर्शित होता है कि कुछ पद कानूनी हैं, उनमें से कुछ पद भारत सरकार या राज्य सरकार के कार्यपालिक आदेशों के आधार पर अस्तित्व में लाए गए हैं । इस संदर्भ में जो सुसंगत है वह है उक्त धारा का खंड (ट), जो निम्नलिखित अनुसार है :–

> "(ट) सारणी में विनिर्दिष्ट किसी कानूनी या अकानूनी निकाय के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव या सदस्य (चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो) का पद ;"

यद्यपि किसी निकाय - केंद्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार से भिन्न - के अधीन लाभ का पद धारण करना संसद् के निर्वाचन की ईप्सा करने वाले किसी व्यक्ति के लिए कोई निरर्हता नहीं है, तथापि, संसद् ने निरर्हता अधिनियम, 1959 के उपबंधों की परिधि में अधिनियम की अनुसूची से उपाबद्ध सारणी के साथ पठित धारा 3(ट) में वर्णित विभिन्न पदों को सम्मिलित करने का निर्णय लिया । क्या ऐसे पद धारकों को संसद् के निर्वाचन की ईप्सा करने से निरर्हित होने की इस आधार पर

किसी चुनौती से बचने के लिए अधिनियम की संरक्षणात्मक परिधि में ऐसे पदों को लाना वस्तुतः आवश्यक है अथवा नहीं, एक विवाद्य प्रश्न है । अधिनियम की अनुसूची में एक सारणी दी गई है, जो कि 2006 के अधिनियम संख्यांक 31 द्वारा अंतःस्थापित की गई थी, जिसमें 55 प्रविष्टियां हैं । उनमें की प्रविष्टि 4 भारतीय सांख्यिकी संस्थान से संबद्ध है, जिसका कि प्रत्यर्थी स्वीकार्यतः अध्यक्ष था । अतः, यह दलील दी गई है कि यह मान लेने पर भी कि यह अनुच्छेद 58(2) के अंतर्गत आने वाला कोई लाभ का पद है, तो भी ऐसे किसी पद को धारण करने से वह प्रश्नगत निर्वाचन लड़ने से संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "निर्रहता निवारण अधिनियम, 1959" कहा गया है) में की गई घोषणा के कारण अपात्र नहीं हो जाता है क्योंकि संविधान में ही अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन ऐसी कोई विधि बनाने के लिए संसद् को प्राधिकृत किया गया है और अनुच्छेद 58(1)(ग) में यह घोषित है कि "लोक सभा का सदस्य होने के लिए अर्हित" कोई व्यक्ति राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र होगा ।

122. दूसरी ओर, श्री जेठमलानी द्वारा यह दलील दी गई है कि अनुच्छेद 58(2) और अनुच्छेद 102(1)(क) की भाषा में अंतर है । ये दोनों ही धाराएं भारत के राष्ट्रपति के पद पर या संसद् के सदस्य के रूप में निर्वाचन लड़ने के लिए क्रमशः कतिपय लाभ के पदों और ऐसे पदों के धारकों से जुड़ी पारिणामिक निरर्हता के संबंध में है । निरर्हता अधिनियम, 1959 के अधीन की गई घोषणा किसी मामले विशेष में ऐसे किसी घोषित पद के धारक को संसद् के किसी सदन का निर्वाचन लड़ने हेतु समर्थ बनाने के लिए अनुच्छेद 102(1)(क) में विनिर्दिष्ट निरर्हता के प्रवर्तन से पर्याप्त विधिक उन्मुक्ति प्रदान करती है किंतु ऐसी घोषणा अनुच्छेद 58(2) में अंतर्विष्ट निरर्हता के प्रवर्तन से कोई उन्मुक्ति प्रदान नहीं करती है ।

123. संविधान के अधीन भारत के राष्ट्रपति के पद पर या विधायी निकायों में से किसी निकाय की सदस्यता के लिए कोई निर्वाचन लड़ने की ईप्सा करने वाले व्यक्ति को संविधान द्वारा नियत कतिपय पात्रता संबंधी मापदंडों को पूरा करना चाहिए । संविधान के अनुच्छेद 58 में यह अनुबंधित है कि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह भारत का नागरिक हो और लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो और वह पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो । इस बात की अवश्य ही अवेक्षा की जानी चाहिए कि संसद् की सदस्यता के बारे

में अर्हताएं और निरर्हताएं क्रमशः अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 में अंतर्विष्ट हैं । अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 निम्न प्रकार हैं :–

"**84. संसद् की सदस्यता के लिए अर्हता** – कोई व्यक्ति संसद् के किसी स्थान को भरने के लिए चुने जाने के लिए अर्हित तभी होगा जब –

(क) वह भारत का नागरिक है और निर्वाचन आयोग द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्ररूप के अनुसार शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है ;

(ख) वह राज्य सभा में स्थान के लिए कम से कम तीस वर्ष की आयु का और लोक सभा में स्थान के लिए कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का है ; और

(ग) उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं हैं जो संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस निमित्त विहित की जाएं ।

102. सदस्यता के लिए निरर्हताएं – (1) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा –

(क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है ;

(ख) यदि वह विकृत चित्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है;

(ग) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया है ;

(घ) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुशक्ति को अभिस्वीकार किए हुए है ;

(ङ) यदि वह संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या

उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है ।

स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है ।

(2) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा यदि वह दसवीं अनुसूची के अधीन इस प्रकार निरर्हित हो जाता है ।"

अनुच्छेद 84 में यह अनुबंधित है कि संसद् के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए अर्हित होने के लिए व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिए, उसे संविधान की तीसरी अनुसूची के साथ पठित उक्त अनुच्छेद के अधीन विनिर्दिष्ट शपथ लेनी चाहिए और वह लोक सभा में स्थान के लिए पच्चीस वर्ष से कम आयु का होना चाहिए और राज्य सभा में स्थान के लिए कम से कम पैंतीस वर्ष की आयु का नहीं होना चाहिए । इस अनुच्छेद में इस बात के लिए भी प्राधिकृत किया गया है कि संसद्, विधि द्वारा, ऐसी अन्य अर्हताएं, भी विहित कर सकेगी । जबकि अनुच्छेद 102 में उन कतिपय प्रवर्ग के व्यक्तियों को घोषित किया गया है जो संसद् के किसी भी सदन के सदस्य के रूप में चुने जाने और सदस्य चुने जाने के पश्चात् सदस्य बने रहने के लिए निरर्हित होंगे । वे हैं – (1) वे व्यक्ति जो भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण किए हुए हों (2) विकृत चित्त वाले व्यक्ति और जिन्हें किसी सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ; (3) कोई अनुन्मोचित दिवालिया व्यक्ति ; (4) वे व्यक्ति जो भारत के नागरिक नहीं हैं या जिन्होंने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता अर्जित कर ली है, आदि । अनुच्छेद 102(ङ) में संसद् की सदस्यता के लिए और निरर्हताएं विहित करने संबंधी विधियां बनाने के लिए संसद् को प्राधिकृत किया गया है । तथापि, जहां तक ऊपरवर्णित व्यक्तियों के प्रथम वर्ग (लाभ का पद धारण करने वाले व्यक्तियों) का संबंध है, अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन संसद् को विधि द्वारा इस बात की घोषणा किए जाने के लिए प्राधिकृत किया गया है कि ऐसे घोषित लाभ के पदों को धारण किया जाना संसद् की सदस्यता के लिए कोई निरर्हता नहीं होगी । अनुच्छेद 102 के स्पष्टीकरण में यह सुस्पष्ट घोषणा की गई है कि ऐसा कोई व्यक्ति, जो संघ का या किसी राज्य का मंत्री है, खंड (1)(क) के अधीन अनुध्यात लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा ।

124. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम' कहा गया है) संसद् द्वारा बनाई गई एक ऐसी विधि है जिसके प्रति अनुच्छेद 84(ग) और अनुच्छेद 102(ङ) में निर्देश किया गया है । संसद् के संदर्भ में, धारा 3 और धारा 4 में यह विहित है कि संसद् के निर्वाचन की ईप्सा करने वाला कोई व्यक्ति अनिवार्य रूप से भारत में संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र का निर्वाचक होगा । दूसरे शब्दों में, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 15 के अधीन अनुध्यात निर्वाचक नामावली में निर्वाचक के रूप में रजिस्ट्रीकरण के लिए विहित विभिन्न अर्हताओं को भी ऐसे व्यक्ति द्वारा, संसद् के लिए निर्वाचन लड़ने हेतु पात्र होने के लिए, पूरा किया जाना चाहिए ।

125. उपर्युक्त उपबंधों की संवीक्षा किए जाने पर मुझे यह प्रतीत होता है कि संसद् का सदस्य होने के लिए पात्रता और निरर्हता दो सुभिन्न बाते हैं । मेरी दृष्टि में, ऐसा कोई व्यक्ति, जो संसद् का सदस्य होने के लिए पात्र है और सदस्य होने के लिए निरर्हित नहीं है, स्वतः ही भारत के राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र नहीं हो जाएगा । संसद् की सदस्यता के निर्वाचन तथा भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए लागू पात्रता मापदंड में अंतर है ।

126. यद्यपि अनुच्छेद 58 में यह घोषित है कि वह व्यक्ति जो लोक सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के लिए पात्र है, राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए पात्र होगा, इसमें भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन की ईप्सा करने वाले किसी व्यक्ति के लिए पैंतीस वर्ष की उच्चतर आयु की अर्हता अनुबंधित है जबकि अनुच्छेद 84(ख) के अधीन लोक सभा के निर्वाचन की ईप्सा करने वाले व्यक्ति के लिए केवल पच्चीस वर्ष से कम आयु का होना ही पर्याप्त है । दूसरा विभेद यह है कि : अनुच्छेद 102(1)(क) में यह घोषित है कि भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाले व्यक्ति (जब तक वे संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा संरक्षित न हों) संसद् के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए निरर्हित हैं जबकि अनुच्छेद 58 के उपखंड (2) के अधीन उन व्यक्तियों को निरर्हित किया गया है जो न केवल अनुच्छेद 102(क) के अधीन लाभ का पद धारण किए हुए हैं बल्कि उन व्यक्तियों को भी निरर्हित किया गया है जो ऊपरवर्णित किसी भी सरकार के नियंत्रणाधीन किसी भी स्थानीय या किसी अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का पद धारण किए हुए हैं । दूसरे शब्दों में, किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण

करना संसद् की सदस्यता के लिए कोई निरर्हता नहीं है जबकि यह भारत के राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के लिए एक निरर्हता है ।

127. एक और विभेद यह है कि लाभ के किसी पद को, जिसको धारण करने से कोई व्यक्ति संसद् के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए निरर्हित हो जाता है, संसद् द्वारा लाभ के ऐसे पद के रूप में घोषित किया जा सकता है, जिसको धारण करने से धारक संसद् का सदस्य होने से निरर्हित जो जाता है । ऐसा कोई प्राधिकरण भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन में अभ्यर्थियों के संदर्भ में अभिव्यक्त रूप से संसद् को प्रदत्त नहीं किया गया है ।

128. अतः जब अनुच्छेद 58(1)(ग) में यह अनुबंधित है कि कोई व्यक्ति भारत के राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह लोक सभा का सदस्य होने के लिए अर्हित है, लाभ के कतिपय पदों के संबंध में संसद् द्वारा की गई संरक्षात्मक घोषणा अनुच्छेद 102(1)(क) के प्रति निर्देश्य, ऐसे पदों के धारकों को राष्ट्रपतीय निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र नहीं बनाती है । विशिष्टतया, किसी "स्थानीय या अन्य प्राधिकारी" के अधीन लाभ का पद धारण करने वाले धारक निश्चित रूप से भारत का राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए निरर्हित हैं । उक्त निरर्हता को संसद् द्वारा हटाया नहीं जा सकता क्योंकि अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन संसद् को भारत सरकार या राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का पद धारण करने वालों के संदर्भ में ऐसी कोई घोषणा करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया है क्योंकि स्पष्टतया ऐसे किसी पद के धारण किए जाने को संविधान के अधीन संसद् की सदस्यता के लिए कोई निरर्हता होने के रूप में घोषित नहीं किया गया है । मैं श्री जेठमलानी की दलील को स्वीकार करता हूं । मेरी राय में, संविधान में भारत के राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के लिए अति कठोर अर्हताएं विहित हैं और अनुच्छेद 58(2) के अधीन अनुबंधित निरर्हता के प्रति संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा छूट नहीं दी जा सकती है ।

129. मेरी इस राय का इस न्यायालय द्वारा **बाबूराव पटेल और अन्य** बनाम **डॉ. जाकिर हुसैन और अन्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय से समर्थन होता है जिसमें कि संविधान के अनुच्छेद 58 और अनुच्छेद 84 के बीच के अंतर की समीक्षा की गई थी । भारत के राष्ट्रपति के रूप में डॉ.

---

[1] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 904.

जाकिर हुसैन के निर्वाचन को चुनौती देते हुए एक निर्वाचन अर्जी इस न्यायालय में फाइल की गई थी, जिसमें न्यायालय द्वारा जो टिप्पणी की गई वह इस प्रकार है :–

> "9. अर्जीदारों की दलील यह है कि चूंकि अनुच्छेद 84 के खंड (क) के कारण संसद् के किसी सदन के निर्वाचन के लिए खड़े होने वाले व्यक्ति के लिए तीसरी अनुसूची में विहित प्ररूप में शपथ लेना आवश्यक हो गया है, अतः राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के लिए खड़े होने वाले व्यक्ति को भी ऐसी शपथ लेनी चाहिए क्योंकि अनुच्छेद 58(1)(ग) में यह अपेक्षित है कि राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन हेतु पात्र होने के लिए कोई व्यक्ति लोक सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के लिए अर्हित होना चाहिए । ....अर्जीदारों ने यह दलील दी कि कोई भी व्यक्ति लोक सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के लिए अर्हित तभी होगा जब वह तीसरी अनुसूची में तत्प्रयोजनार्थ विहित प्ररूप में शपथ लेता है और प्रतिज्ञान करता है, अतः यह उपबंध राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के लिए खड़े होने वाले व्यक्ति को लागू होता है क्योंकि ऐसी शपथ के बिना वह लोक सभा के निर्वाचन के लिए खड़े होने के लिए अर्हित नहीं होगा ।"

इस न्यायालय ने पैरा 10 में संविधान के अनुच्छेद 58 और अनुच्छेद 84 की भाषा की तुलना की और यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "................ और उनका एक साथ परिशीलन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन के लिए खड़े होने वाले व्यक्ति के पास ऐसी अर्हताएं होना आवश्यक है जो संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन उस निमित्त विहित की जाएं । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 58(1) के खंड (ग) में यह अधिकथित है कि राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के लिए खड़ा होने वाला व्यक्ति लोक सभा की सदस्यता के लिए अर्हित होना चाहिए, अनुच्छेद 102 (जिसमें संसद् सदस्यों के लिए अर्हताएं अधिकथित हैं) भी उस दशा के सिवाय लागू होगा जहां कि अनुच्छेद 58(2) में कोई विशेष उपबंध अंतर्विष्ट हो । अनुच्छेद 58(1) के खंड (ग) के अंतर्गत लोक सभा के सदस्यों के लिए ऐसी अर्हताओं का उल्लेख है जो संसद् द्वारा, विधि द्वारा, अनुच्छेद 84(ग) में अपेक्षित रूप में विहित की जाएं । इसी के आधार पर अनुच्छेद 102 में उपबंध किया गया है, उस अनुच्छेद में ऐसी कतिपय निरर्हताएं अधिकथित हैं जिनसे

> राष्ट्रपतीय निर्वाचन के अभ्यर्थी को ग्रस्त नहीं होना चाहिए अर्थात् उसे लोक सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचन लड़ने के लिए पात्र होना चाहिए । किंतु यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 58(1) के खंड (क) और खंड (ख) में जो उपबंधित है उसका अर्थ उसी रूप में लगाया जाना चाहिए और इसके लिए राष्ट्रपतीय अभ्यर्थी की नागरिकता और आयु के विषय में अनुच्छेद 84 के खंड (क) और खंड (ख) का अर्थान्वयन करने की आवश्यकता नहीं है । चूंकि अनुच्छेद 58(1) के खंड (क) और (ख) में उस निमित्त विनिर्दिष्ट उपबंध किया गया है अतः हमारी राय में अनुच्छेद 84 के खंड (क) और (ख) को इससे अपवर्जित किया गया है । ऐसा अपवर्जन संशोधन अधिनियम के पूर्व विद्यमान था ।"

इस न्यायालय ने राष्ट्रपति निर्वाचन लड़ने के लिए संविधान की तीसरी अनुसूची में निर्दिष्ट प्ररूप के अनुसार शपथ लेने की अपेक्षा का परिशीलन (निर्वचन) करने से इनकार कर दिया था ।

130. ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इस न्यायालय ने इस तथ्य को विचार में लिया कि सोलहवें सांविधानिक संशोधन के पूर्व, ऐसी कोई शपथ लेने की अपेक्षा न तो संसद् के निर्वाचन के संदर्भ में और न ही राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के संदर्भ में विद्यमान थी । इसे सोलहवें संशोधन द्वारा संसद् के लिए निर्वाचन लड़ने के लिए अर्हित व्यक्ति होने के लिए एक आवश्यक अपेक्षा के रूप में लाया गया था । ऐसा कोई संशोधन, जिसमें राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन लड़ने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश किया गया है, न किए जाने से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि संविधान में ऐसी किसी अपेक्षा को राष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए भी लागू किया जाना कभी भी आशयित नहीं था । इस न्यायालय ने पैरा 12 में जो अभिनिर्धारित किया है वह इस प्रकार है :–

> "अब यदि संसद् का आशय यह था कि संसद् के निर्वाचन के लिए खड़े होने वाले व्यक्तियों द्वारा ली जाने वाली शपथ के समान एक शपथ राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के लिए खड़े होने वाले व्यक्तियों को भी लेनी चाहिए, तो इस बात का कोई कारण नहीं है कि ऐसा संशोधन अनुच्छेद 58(1)(क) में क्यों नहीं किया गया था । इसके अतिरिक्त, यदि संसद् का आशय यह था कि राष्ट्रपतीय निर्वाचन के अभ्यर्थी को भी निर्वाचन के लिए खड़े होने के पूर्व ऐसी शपथ लेनी चाहिए तो ऐसी शपथ का प्ररूप भी या तो तीसरी अनुसूची में अथवा अनुच्छेद 60 का संशोधन करके, जिसमें राष्ट्रपति के रूप में

निर्वाचित व्यक्ति को अपना पद ग्रहण करने के पूर्व शपथ लेने का उपबंध किया गया है, विहित किया जाना चाहिए था । किंतु हमें ऐसा विदित होता है कि ऐसा कोई परिवर्तन न तो अनुच्छेद 58(1)(क) या अनुच्छेद 60 में और न ही तीसरी अनुसूची में राष्ट्रपतीय निर्वाचन के अभ्यर्थी द्वारा निर्वाचन के लिए खड़े होने से पूर्व उसके द्वारा ली जाने वाली शपथ का प्ररूप विहित करने संबंधी ऐसा कोई परिवर्तन किया गया है । इससे यह सुस्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि संसद् का, ऐसा संशोधन अधिनियम लाने के समय ऐसा कोई आशय नहीं था कि संसद् के निर्वाचन के लिए खड़े होने वाले अभ्यर्थी द्वारा ली जाने वाली शपथ के समान शपथ राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन के लिए भी ली जानी चाहिए । इस प्रकार, अनुच्छेद 84(क) के उपबंध का, जो संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 58(1)(क) में, जिसमें कोई संशोधन नहीं किया गया था, संशोधन किए जाने के पश्चात् विद्यमान था अर्थान्वयन किए जाने का कोई कारण है । यह एक कारण है जिससे हमारी यह राय है कि जहां तक राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन का संबंध है, उस पद के लिए खड़े होने वाले अभ्यर्थी को राष्ट्रपति के पद के निर्वाचन हेतु पात्र होने के लिए कोई शपथ नहीं लेनी होगी ।"

131. अतः, मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि संसद् द्वारा निरर्हता अधिनियम, 1959 में की गई घोषणा में भारत के राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन लड़ने की ईप्सा करने वाले किसी अभ्यर्थी के लिए, यदि संभवतः ऐसा कोई अभ्यर्थी अनुच्छेद 58(2) के अधीन अनुध्यात कोई लाभ का पद धारण करता है, उन्मुक्ति प्रदान नहीं की गई है ।

132. यदि इस दलील को देखते हुए यह मान भी लिया जाए कि संसद् द्वारा की गई [अनुच्छेद 102(क) के अधीन अनुध्यात और की गई] घोषणा में राष्ट्रपतीय निर्वाचन के किसी अभ्यर्थी की बाबत भी निरर्हता को समाप्त किया जा सकता है, तो भी अनुच्छेद 102(क) संसद् को केवल भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ के पदों के संबंध में ऐसी घोषणा करने के लिए प्राधिकृत किया गया है न कि "स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों" के अधीन लाभ के पदों के संबंध में । अतः, भारतीय सांख्यिकी संस्थान की तथा उसके अध्यक्ष के पद की विधिक प्रकृति की समीक्षा किया जाना अपेक्षित है ।

133. क्या ऊपरवर्णित संस्थान के अध्यक्ष के पद को भारत सरकार या

राज्य सरकार या स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का ऐसा पद कहा जा सकता है जिसे कि अनुच्छेद 58(2) के अधीन का प्रतिषेध लागू होता हो और प्रत्यर्थी को प्रश्नगत निर्वाचन लड़ने के लिए अपात्र बनाता हो ?

134. इस न्यायालय द्वारा **बी. एस. मिन्हास** बनाम **भारतीय सांख्यिकी संस्थान और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान एक ऐसा प्राधिकारी है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत आता है, अतः वह संविधान के भाग 3 के प्रयोजन के लिए 'राज्य' है । भारतीय सांख्यिकी संस्थान की स्कीम के अधीन, भारत सरकार का इस संस्थान के प्रशासन पर गहरा और व्यापक नियंत्रण है । यह संस्थान को वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराती है ।

135. उक्त संस्थान सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत निकाय है, जिसके क्रियाकलापों को कुछ सीमा तक भारतीय सांख्यिकी संस्थान अधिनियम, 1959 (1959 का अधिनियम संख्यांक 57) (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'संस्थान अधिनियम' कहा गया है) नामक संसद् की अधिनियमिति द्वारा विनियमित किया जाता है । उक्त अधिनियम की उद्देशिका में यह घोषित है कि :–

> "भारतीय सांख्यिकी संस्थान के नाम से ज्ञात संस्था को, वर्तमान में जिसका रजिस्ट्रीकृत कार्यालय कलकत्ता में है, **राष्ट्रीय महत्व की संस्था** घोषित करने के लिए और उससे संबद्ध कुछ मामलों का उपबंध करने के लिए अधिनियम ।"

136. यह अवश्य ही स्मरण रखा जाना चाहिए कि अनुच्छेद 246(1) के साथ पठित सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 64 के अधीन संसद् को निम्नलिखित की बाबत विधियां बनाने के लिए प्राधिकृत किया गया है : –

> "भारत सरकार द्वारा पूर्णतः या भागतः वित्तपोषित और संसद् द्वारा, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा संस्थाएं ।"

137. संस्थान अधिनियम की धारा 4 के अधीन उसमें विनिर्दिष्ट विभिन्न शाखाओं के लिए उपाधियां और डिप्लोमा देने के लिए संस्थान को

---

[1] (1983) 4 एस. सी. सी. 582.

प्राधिकृत किया गया है । धारा 5 के अधीन सरकार को प्रत्येक वित्तीय वर्ष में संसद् द्वारा यथा विनियोजित कुछ धनराशियों का संस्थान को संदान किए जाने के लिए प्राधिकृत किया गया है । अधिनियम (धारा 6) में संस्थान को अपने लेखाओं की ऐसे संपरीक्षकों से, जो भारत सरकार द्वारा, भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक और संस्थान के परामर्श से नियुक्त किए जाएं, कराने के लिए आबद्धकर बनाया गया है । धारा 7 में संस्थान को कतिपय कार्य भारत सरकार के पूर्वानुमोदन के बिना करने से प्रतिषिद्ध किया गया है । वर्तमान मामले के लिए अधिनियम का पूरा ब्यौरा देना आवश्यक नहीं है । धारा 7 इस प्रकार है :–

"**धारा 7 – संस्थान द्वारा कुछ कार्यों के लिए केंद्रीय सरकार का पूर्वानुमोदन आवश्यक होना –** सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) या संस्थान के ज्ञापन या नियमों और विनियमों में किसी बात के होते हुए भी, केंद्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन के बिना, संस्थान –

(क) उन प्रयोजनों में से किसी को परिवर्तित, विस्तारित या न्यून नहीं करेगा जिनके लिए वह स्थापित किया गया था या जिनके लिए इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पहले उसका उपयोग किया जा रहा है, या अपने को किसी अन्य संस्थान या सोसाइटी से पूर्णतः या अंशतः समामेलित नहीं करेगा ; या

(ख) किसी रीति में अपने ज्ञापन या नियम और विनियमों को परिवर्तित या संशोधित नहीं करेगा ; या

(ग) केंद्रीय सरकार द्वारा विशिष्टतः अर्जन के लिए उपबंधित धन से संस्थान द्वारा अर्जित किसी संपत्ति का विक्रय या अन्यथा व्ययन नहीं करेगा :

परंतु ऐसी किसी जंगम संपत्ति या जंगम संपत्ति के वर्ग के लिए, जो केंद्रीय सरकार द्वारा साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किया जाए, ऐसा अनुमोदन आवश्यक नहीं होगा; या

(घ) विघटित नहीं होगा ।"

138. उपर्युक्त से यह निरापद रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संस्थान अनुच्छेद 58(2) के अर्थान्तर्गत भारत सरकार के नियंत्रणाधीन एक प्राधिकारी है ।

139. संस्थान अधिनियम की स्कीम और उसकी उद्देशिका से यह विदित होता है कि सोसाइटी का प्रशासन उन क्रियाकलापों के सिवाय, जो विनिर्दिष्ट रूप से 1959 के अधिनियम (1959 का 57) द्वारा विनियमित किए जाते हैं, अभी भी सोसाइटी की उपविधियों और विनियमों के अनुसार चलाया जाना होता है । संस्थान के अध्यक्ष का पद किसी कानून द्वारा सृजित कोई पद नहीं है अपितु सोसाइटी की उपविधियों द्वारा सृजित एक पद है । अध्यक्ष को सोसाइटी के विनियमों के अधीन सृजित परिषद् द्वारा चुना जाना अपेक्षित है । अतः, निश्चित रूप से केंद्रीय या राज्य सरकार के अधीन (लाभ या अलाभ) का कोई पद नहीं है ।

140. अर्जीदार के विद्वान काउंसेल ने यह पुरजोर दलील दी है कि इस तथ्य से कि संसद् ने भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अध्यक्ष का पद निरर्हता अधिनियम, 1959 से उपाबद्ध सारणी में विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित करना ठीक समझा था, विधितः यह विवक्षित होता है कि प्रश्नगत पद एक लाभ का पद है । विद्वान् काउंसेल द्वारा **एम. वी. राजशेखरन और अन्य** बनाम **वट्टल नागराज और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि :–

> "5. .... इस तथ्य से कि समिति के किसी अध्यक्ष के पद अथवा उसके किसी सदस्य को इस अधिनियम की परिधि के अंतर्गत लाया गया है, यह विवक्षित होता है कि संबंधित पद को अनिवार्यतः लाभ का पद माना जाना चाहिए, विधायिका द्वारा उस खंड के अधीन उसका अपवर्जन न किए जाने की दशा में उस पद का धारक विधान मंडल के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए पात्र नहीं हो सकता है । इस उपबंध का उद्देश्य कुछ प्रकार के पदों को धारण करने वालों को छूट प्रदान करने का है और सारभूत रूप में उपबंध यह है कि उन्हें उस छूट का लाभ मिलेगा, भले ही उन्हें अन्यथा लाभ का पद धारण करने वाले के रूप में समझा जाए......।"

141. प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल श्री हरीश साल्वे ने यह दलील दी है कि संविधान के उपबंधों का निर्वचन करते समय विधायिका का इस तथ्य के बारे में कि कोई विशिष्ट पद लाभ का पद है अथवा नहीं, अवबोधन जरूरी नहीं कि वह अनिवार्यतः सही अवबोधन हो और इस न्यायालय से इस प्रश्न की स्वतंत्र रूप से समीक्षा करना अपेक्षित होता है ।

---

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 704, पृष्ठ 711.

142. श्री साल्वे द्वारा यह दलील दी गई है कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अध्यक्ष के पद को भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन ऐसा कोई लाभ का पद नहीं कहा जा सकता जो ऐसे पद के धारक को संसद् का सदस्य या भारत का राष्ट्रपति बनने से निरर्हित बनाता है ।

143. माननीय महान्यायवादी ने यह दलील दी कि निरर्हता अधिनियम, 1959 कोई पारिभाषिक अधिनियमिति नहीं है । इसमें कहीं भी यह परिभाषित नहीं है कि लाभ का पद कौनसा है, बल्कि यह संसद् के कुछ सदस्यों के निर्वाचन को इस आधार पर कि वे लाभ का पद धारण किए हुए हैं, किसी संभाव्य चुनौती का परिहार करने के लिए अत्यधिक सावधानी बरते हुए बनाई गई एक अधिनियमिति है, अतः यह न्यायालय इस बात की समीक्षा करने के लिए आबद्धकर है कि क्या ऐसा कोई विशिष्ट पद लाभ का पद है जो उसके पद के धारक को संसद् का सदस्य या भारत का राष्ट्रपति होने के लिए अपात्र बनाता है ।

144. इस न्यायालय द्वारा **एम. वी. राजशेखरन** वाले (उपर्युक्त) मामले में कर्नाटक राज्य के अधीन कर्नाटक विधान परिषद् के लिए नागराज नामक एक व्यक्ति के निर्वाचन के संदर्भ में लाभ के पद के प्रश्न पर विचार किया गया था । नागराज को कर्नाटक राज्य द्वारा एकल सदस्यीय आयोग में कतिपय समस्याओं का अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया गया था । उस हैसियत में वह कतिपय वेतन और दिन-प्रतिदिन के खर्च की प्रतिपूर्ति का हकदार था। इसके पश्चात् एकल सदस्यीय आयोग के पद पर बने रहने के दौरान नागराज ने कर्नाटक राज्य की विधान परिषद् के निर्वाचन के लिए नामनिर्देशन पत्र फाइल किया । आक्षेप किए जाने पर, नागराज को लाभ का पद धारण किए होने के आधार पर निर्वाचन लड़ने से निरर्हित कर दिया गया था नागराज के नामनिर्देशन को नामंजूर कर दिया गया था । नागराज ने राजशेखरन के निर्वाचन को इस आधार पर प्रश्नगत किया कि उसके नामनिर्देशन को अवैध रूप से नामंजूर किया गया था, जिसमें वह सफल हुआ । राजशेखरन ने इस न्यायालय में अपील की । यह विवाद्यक अनुच्छेद 191 के जिसमें किसी राज्य की विधान सभा या विधान परिषद् के निर्वाचनों के संदर्भ में अनुच्छेद 102 के तत्समान उपबंध है, निर्वचन के इर्द-गिर्द घूमता रहा । कर्नाटक विधान मंडल (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1956 नामक अधिनियमिति कर्नाटक राज्य द्वारा कुछ पदों के धारकों की संरक्षा करने के लिए बनाई गई थी जिससे कि वे इस आधार पर कि वे पद अनुच्छेद 191 के अधीन अनुध्यात लाभ के पद हैं, निरर्हता से ग्रस्त न हो जाएं ।

145. इस न्यायालय द्वारा यह राय व्यक्त की गई कि नागराज अनुच्छेद 191 के अधीन अनुध्यात लाभ का पद धारण किए हुए था, अतः वह निर्वाचन लड़ने के लिए निरर्हित था क्योंकि नागराज को कर्नाटक सरकार द्वारा एक-सदस्यीय आयोग में नियुक्त किया गया था और वह उसे सौंपी गई समस्याओं का अध्ययन करने और सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आबद्धकर था ; यह कि कर्नाटक सरकार द्वारा उस पद को मंत्रिमंडल के सदस्य की पंक्ति की प्रास्थिति दी गई थी और नागराज के वेतन संबंधी व्ययों और दिन-प्रतिदिन के खर्चों को चुकाने के लिए बजट संबंधी उपबंध किया गया था । इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी लेखबद्ध किया कि :–

> "नागराज जो पारिश्रमिक ले रहा था, उसे अधिनियम की धारा 2(ख) की परिधि के भीतर "प्रतिकरात्मक भत्ता" अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।"

146. कर्नाटक विधान-मंडल (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1956 के विभिन्न उपबंधों की समीक्षा की प्रक्रिया के दौरान इस न्यायालय ने, श्री जेठमलानी द्वारा जिन मताभिव्यक्ति का अवलंब लिया गया था, उसका कथन किया (पैरा 55) । मेरी राय में, इस न्यायालय द्वारा राजशेखरन वाले मामले में इस विवाद्यक की कभी भी विनिर्दिष्ट रूप से समीक्षा नहीं की गई थी कि अनुच्छेद 191 या अनुच्छेद 102 (यथास्थिति) के अधीन आने वाली निरर्हता का निवारण करने संबंधी किसी अधिनियमिति में ऐसे पद को सम्मिलित किए जाने से, विधि की दृष्टि में, यह विवक्षित होता है कि ऐसे किसी अधिनियम में विनिर्दिष्ट पद अनिवार्यतः लाभ का पद है अथवा नहीं । अतः, मेरी राय में, ऊपर उद्धरित कथन से उक्त निर्णय का विनिश्चयाधार गठित नहीं होता है ।

147. अन्यथा भी, निरर्हता अधिनियम, 1959 की अनुसूची में विभिन्न पदों को सम्मिलित किए जाने से केवल संसद् का यह अवबोधन प्रतिबिंबित होता है कि वे पद अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन अनुध्यात लाभ के पद हैं । किंतु ऐसा कोई अवबोधन न तो निश्चायक है और न ही इस न्यायालय पर संविधान का निर्वचन करते समय आबद्धकर है । जैसी कि माननीय महान्यायवादी द्वारा दलील दी गई है, ऐसे सम्मिलित किए जाने की कार्रवाई 'अत्यधिक सावधानी बरतते हुए' की गई कार्रवाई प्रतीत होती है । प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किया गया प्रति शपथपत्र, पृष्ठ 11, पैरा 33 भी देखें, जिसमें यह कथन किया गया है कि :–

"........ इसके अतिरिक्त, उक्त अधिनियम में संशोधन इस न्यायालय द्वारा जया बच्चन वाले मामले में [(2006) 5 एस. सी. सी. 266] किए गए निर्णय को देखते हुए वर्ष 2006 में किया गया था । उस अधिनियम में संशोधन बहुत ही सावधानी बरतते हुए किया गया था जैसाकि संशोधन अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन से स्पष्ट होता है । यह धारणा कि उस अधिनियम के अधीन अभिव्यक्त अपवर्जन इस बात का निश्चायक है कि उस पद से लाभ के पद का गठन होता है अथवा नहीं, इस समय अतर्कसंगत है अनेक संशोधन बहुत ही सावधानी बरतते हुए किए गए थे जिससे कि ऐसे पद के धारकों के संबंध में किसी संविवाद से बचा जा सके । मात्र इस तथ्य से कि किसी पद को उस अधिनियम के अधीन अपवर्जित किया गया है, यह सिद्ध नहीं होता है कि सभी अन्य कानूनों और अनुच्छेद 58 के संबंध में वह पद अनिवार्यतः लाभ का पद है ।"

विधि की यह स्थापित स्थिति है कि संविधान और विधियों का निर्वचन करना स्पष्ट रूप से न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आता है और उसका कर्तव्य है । अतः, मैं श्री जेठमलानी की इस दलील को नामंजूर करता हूं ।

148. अतः, "लाभ का पद" और "राज्य सरकार/केंद्रीय सरकार के अधीन लाभ का पद" पदों के अर्थ की समीक्षा करना अपेक्षित है ।

149. इस न्यायालय द्वारा **शिवमूर्त्ति स्वामी इनामदार** बनाम **अगादी संगन्ना आन्दनप्पा**[1] वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि लाभ का पद कौन सा होता है ? और न्यायालय द्वारा **रावन्ना सुबन्ना** बनाम **जी. एम. कगीरप्पा**[2] वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत को दोहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :–

"14. .... प्रश्नगत पद सरकार के अधीन धारण किया गया होना चाहिए और उससे कुछ वेतन, सम्बलम्, उपलब्धियां या भत्ते भी जुड़े होने चाहिएं । "लाभ" शब्द से धनीय लाभ का भाव द्योतित होता है । यदि कोई लाभ हुआ है तो उसकी सीमा या मात्रा तात्विक नहीं होगी, किंतु किसी व्यक्ति द्वारा उस पद के संबंध में, जो वह धारण करता है, प्राप्य धनराशि इस बात का विनिश्चय करने में तात्विक हो

---

[1] (1971) 3 एस. सी. सी. 870.

[2] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 653.

सकती है क्या उस पद से वस्तुतः कोई लाभ हुआ है........।''

150. **शिबू सोरेन** बनाम **दयानंद सहाय और अन्य**[1] वाले मामले में दोनों प्रश्नों पर विचार किया गया था । उक्त निर्णय का पैरा 26 और पैरा 27 निम्न प्रकार है :–

> ''पैरा 26. ''लाभ का पद'' पद को संविधान अथवा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है । आम भाषा में, ''लाभ'' पद से कुछ धनीय लाभ का भाव द्योतित होता है । यदि वस्तुतः कोई लाभ होता है, तो इसका ''मानदेय'' - ''पारिश्रमिक'' - ''वेतन'' के रूप में होना तात्विक नहीं है - यह एक उपादान है न कि प्ररूप जिसका कि कोई महत्व हो और यहां तक कि ''धनीय लाभ'' की सीमा या मात्रा भी सुसंगत नहीं है जिस बात का पता लगाने की जरूरत है वह यह है कि संबंधित व्यक्ति द्वारा उस पद के संबंध में, जो वह धारण करता है, प्राप्य धनराशि से उसे प्रतिकर ''से भिन्न कोई धनीय लाभ'' अपने जेब खर्च को चुकाने के लिए प्राप्त होता है जिससे संभवतः वह व्यक्ति उस कार्य संचालन के प्रभाव में आ जाए, जो उसे वह लाभ दे रहा है ।
>
> पैरा 27. किंतु इस बात का अवधारण करने की दृष्टि से कि संबंधित पद ''लाभ का पद'' है अथवा नहीं, न्यायालय को वास्तविक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । आवश्यक ब्यौरों की अनदेखी करते हुए कोई व्यापक या साधारण मत अपनाना वांछनीय नहीं है और न ही कोई ऐसा कोई संकुचित दृष्टिकोण अपनाना अनुज्ञेय है जिसका पारिभाषिक रूप वास्तविकता को छिपा दे । कानून के निर्वचन का यह नियम है कि कानूनी उपबंधों का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाए जिससे कि विसंगति से बचा जा सके और जिससे अधिनियम का उद्देश्य विफल होने या निरर्थक बनने की अपेक्षा अग्रसर हो । अतः न्यायालय को किसी कानून का अर्थान्वयन करते समय संपूर्ण अधिनियम का अर्थान्वयन करके यथावत् अर्थान्वयन करने से बचना चाहिए (सुविधा के लिए अशोक कुमार भट्टाचार्य **बनाम** अजय विश्वास [(1985) 1 एस. सी. सी. 151], तिनसुखिया इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड **बनाम** असम राज्य [(1989) 3 एस. सी. सी. 709] और आय-कर आयुक्त **बनाम** जे. एच. गोतला [(1985) 4

---

[1] (2001) 7 एस. सी. सी. 425.

एस. सी. सी. 343] वाले मामले देखिए) ।"

151. उक्त मामले में प्रश्न यह था कि झारखंड क्षेत्र स्वायत्त परिषद् अधिनियम, 1994 की धारा 20 के अधीन गठित अंतरिम झारखंड क्षेत्र स्वायत्त परिषद् का अध्यक्ष राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद धारण किए हुए था अथवा नहीं । इस न्यायालय को इन दोनों प्रश्नों की समीक्षा करनी पड़ी थी कि क्या प्रश्नगत पद किंचित लाभ का पद है और दूसरे क्या वह राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद था ? इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय की इस राय की पुष्टि की कि अंतरिम झारखंड क्षेत्र स्वायत्त परिषद् के अध्यक्ष का पद न केवल लाभ का पद था बल्कि राज्य की सरकार के अधीन एक लाभ का पद था । न्यायालय ने इस बात की अवेक्षा की कि "लाभ का पद" विधि के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है, अतः उन विचारणाओं को उपदर्शित किया जो इस प्रश्न का कि कोई विशिष्ट पद लाभ का पद है अथवा नहीं, अवधारण करने के लिए सुसंगत हैं । न्यायालय विभिन्न तथ्यों पर विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि शिबू सोरेन को जो विभिन्न रकमें दी गई थीं उन्हें "प्रतिकर भत्ते" की प्रकृति का नहीं कहा जा सकता है और वे पारिश्रमिक या वेतन की प्रकृति की थीं जिससे अंतर्निहित रूप से "लाभ" का और शिबू सोरेन को "धनीय लाभ" देने का तत्व विवक्षित होता है और अंतरिम परिषद् के अध्यक्ष का पद सीमित कार्यकाल का एक अस्थायी प्रकृति का पद था और अंतरिम परिषद् के सदस्यों को राज्य द्वारा राज्य के प्रसादपर्यन्त पद धारण करने के लिए नियुक्त किया गया था ।

152. न्यायालय द्वारा यथा उल्लिखित कसौटी यह थी कि क्या उस पद से पदधारी को प्रतिकर से भिन्न कोई धनीय लाभ, अपने जेब खर्च को चुकाने के लिए, मिलता है जिससे कि इस बात की संभावना हो सकती है कि वह व्यक्ति उस कार्यसंचालन के प्रभाव में आ जाए । ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर अपने पूर्व निर्णयों की समीक्षा की ।

153. ऊपरवर्णित दोनों मामलों में तथा उनमें उद्धरित पूर्व नजीरों में इस प्रश्न की समीक्षा की गई थी कि लाभ का पद कौनसा होता है और इस बात के अवधारण के लिए कौनसी कसौटियां सुसंगत हैं कि ऐसा पद सरकार के अधीन धारण किया हुआ है अथवा नहीं, किंतु इस प्रश्न पर कि अनुच्छेद 58(2) के अधीन केंद्रीय या राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का पद कौनसा होता है, इस न्यायालय द्वारा उन मामलों में विचार नहीं किया गया था ।

154. मेरे मन में अगला प्रश्न यह उठा कि क्या भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता के अध्यक्ष का पद, जिसके बारे में मैं पहले ही निष्कर्ष निकाल चुका हूं कि वह अनुच्छेद 58(2) के प्रयोजनार्थ एक प्राधिकारी है, ऐसा लाभ का पद है, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा ऊपरवर्णित विभिन्न निर्णयों में स्पष्ट किया गया है । मैं इस आधार पर अग्रसर होता हूं कि इस बात का अवधारण करने के लिए कि अनुच्छेद 58(2) के अधीन कोई लाभ का पद अनुध्यात है अथवा नहीं, सुसंगत कसौटियां वैसी ही कसौटियां हैं जैसी कि इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 102(1)(क) के संदर्भ में अधिकथित की गई हैं । उक्त प्रश्न का उत्तर उन निबंधनों और शर्तों पर निर्भर करता है जिनके अधीन प्रत्यर्थी ने वह पद धारण किया था । ये प्रश्न कि उस हैसियत में उसे संदत्त रकमें, यदि कोई हों, प्रतिकर की प्रकृति की हैं या ऐसी रकमें हैं जो धनीय लाभ पहुंचाती हैं, तथ्य संबंधी प्रश्न हैं, जिनका विनिश्चय, मेरी राय में, केवल उन सभी सुसंगत तथ्यों को अभिनिश्चित करने के पश्चात् किया जाना चाहिए, जो सुस्पष्ट रूप से केवल प्रत्यर्थी या ऊपरवर्णित संस्थान की जानकारी में हैं । मैं यह कथन भी करना चाहता हूं कि प्रत्यर्थी ने अपने संक्षिप्त प्रत्युत्तर में यह कथन किया है कि उसे ऊपरवर्णित पद धारण करने से कोई धनीय लाभ प्राप्त नहीं हुआ था । वह कथन इस प्रकार है :–

> "पूर्वोक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यह निवेदन किया जाता है कि किसी भी दशा में भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अध्यक्ष का पद, वेतन, उपलब्धियों, किसी प्रकार की परिलब्धियों आदि की बात तो छोड़ दें, उसके लिए कोई फायदे और पारिश्रमिक भी नहीं मिलते हैं, कोई लाभ का पद नहीं है । यह निवेदन किया जाता है कि भारतीय सांख्यिकी संस्थान सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है । यह भारतीय सांख्यिकी संस्थान अधिनियम, 1954 द्वारा भी शामिल होती है । संस्थान की कार्यपालिक शक्तियां भारतीय सांख्यिकी संस्थान के निदेशक में निहित हैं । संस्थान का प्रधान और अध्यक्ष, दोनों ही प्रोटोकोल की दृष्टि से, भारतीय सांख्यिकी संस्थान के निदेशक से उच्चतर पंक्ति में है, किंतु उसके नीचे संस्थान का प्रधान और अध्यक्ष, दोनों ही कोई भी न तो उपलब्धियां, परिलब्धियां या फायदे प्राप्त करने का हकदार है और न ही प्राप्त करते हैं । अध्यक्ष की कोई कार्यपालिक भूमिका नहीं है । इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 58 के अधीन निरर्हता

उक्त पद के प्रति लागू नहीं होती है ।"

ऐसे परस्पर विरोधी तथ्य संबंधी कथनों की ऐसी समुचित जांच करने के पश्चात् यदि यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उक्त पद कोई लाभ का पद है तो अनिवार्यतः इस प्रश्न को कि प्रत्यर्थी ने निर्णायक तारीख तक अपना त्यागपत्र दिया था अथवा नहीं, तथ्य संबंधी प्रश्न की जांच करने में पुनः अभिनिश्चित किया जाना अपेक्षित होगा ।

155. क्या तथ्यों के ऐसे प्रश्नों पर कोई विनिश्चय प्रत्यर्थी के उस शपथपत्र पर किया जा सकता है ? जिसकी सत्यता को किसी और संवीक्षा की विषय-वस्तु नहीं बनाया गया है, अर्जीदार को यदि भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अभिलेखों का निरीक्षण करने या उनका पता लगाने की अनुज्ञा दी जाती है तो वह प्रत्यर्थी के शपथपत्र की सत्यता का या असत्यता को प्रकट करने के लिए जानकारी प्राप्त कर भी सकता है, नहीं भी कर सकता है ।

156. विवाद्यक यह नहीं है कि अर्जीदार प्रसंगवश अपने पक्षकथन को सिद्ध करने में समर्थ होगा अथवा नहीं । विवाद्यक यह है कि क्या अर्जीदार अपने पक्षकथन को सिद्ध करने के लिए विधि की युक्तिसंगत प्रक्रिया के लिए हकदार है ? इस मामले में पक्षकारों का जो अतिशय दांव पर लगा है वह कुछ और नहीं बल्कि इस देश के राष्ट्रपति का पद है । संविधान में ऐसे विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए केवल एक ही मंच (न्यायालय) का सृजन किया गया है । इस संबंध में अन्य सभी मार्ग बंद हैं । यह अभिनिर्धारित करना कि यह अर्जी नियम 20 के अधीन अनुध्यात किसी नियमित सुनवाई के योग्य नहीं है, मेरी राय में, इस अपेक्षा से संगत नहीं है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि वह किया गया प्रतीत भी होना चाहिए ।

157. आंग्ल-सेक्सन न्यायशास्त्र के अधीन, जिसका कि हम अनुसरण करते हैं, पक्षकारों के अधिकारों के न्यायनिर्णयन में उन सुसंगत तथ्यों को सिद्ध किया जाना अपेक्षित है जिनसे न्यायालय से अनुतोष का दावा करने वाले पक्षकार के लिए आवश्यक वाद हेतुक गठित होता हो । ऐसे तथ्यों को मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करके सिद्ध किया जाना होता है । इस संभाव्यता को देखते हुए (कि किसी मामले विशेष में) तथ्य का कथन करने वाले पक्षकार के अपने नियंत्रण में ऐसे सभी साक्ष्य न हों, जो ऐसे किसी तथ्य को साबित करने के लिए आवश्यक हों, सिविल न्यायालय ऐसे दस्तावेजों के प्रकटन, निरीक्षण, पेश किए जाने आदि का आदेश करने और उन व्यक्तियों को, जिनकी अभिरक्षा में ऐसे सुसंगत दस्तावेज उपलब्ध हों,

समन करने के लिए सशक्त है । (सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 11 आदि के साथ पठित धारा 30 देखिए) । ऐसा सशक्तीकरण न्याय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए परिकल्पित एक युक्तिसंगत प्रक्रिया के भाग रूप है ।

158. यदि निर्वाचन अर्जी के न्यायनिर्णयन में उस जानकारी को प्राप्त करना अपेक्षित है जो अनन्य रूप से प्रत्यर्थी और भारतीय सांख्यिकी संस्थान के पास उपलब्ध है और जो सुसंगत हो सकती है, तो क्या अर्जीदार को यह कहा जा सकता है कि वह इस आधार पर ऐसी जानकारी प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो पाएगा कि विधि में ऐसा अवसर प्रदान किए जाने संबंधी कोई उपबंध नहीं है ? हम यह पहले ही निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता निर्वाचन अर्जी के संबंध में लागू नहीं होती है । इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन बनाए गए नियमों में इस बारे में कोई उपबंध नहीं है । किंतु इस तथ्य से कि यह न्यायालय निर्वाचन अर्जियों के विचारण को लागू होने वाली प्रक्रिया विनियमित करने संबंधी नियम बनाने के लिए प्राधिकृत है, यह विवक्षित होता है कि इस न्यायालय को ऐसी जानकारी प्राप्त करने के लिए समुचित आदेश पारित करने की शक्तियां प्राप्त हैं । इसके विपरीत अभिनिर्धारित करना किसी वादी को, जो (अतिअनुकूल राजनीतिक शासन प्रणाली को देखते हुए) संभवतः देश का प्रथम नागरिक हो, यह कहने की कोटि में आएगा कि प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक भारत गणराज्य की विधि के अधीन ऐसी किसी युक्तिसंगत प्रक्रिया का भी उपबंध नहीं है जो कि विदेशी शासकों द्वारा इस देश के साधारण नागरिकों को उपलब्ध कराई गई थी – जो अभी भी इस देश के किसी साधारण वादी को उपलब्ध है ।

159. इसी प्रकार, प्रत्यर्थी के इस कथन को कि उसने भारतीय सांख्यिकी संस्थान का अध्यक्ष रहने के आधार पर कोई धनीय फायदा प्राप्त नहीं किया था, अर्जीदार को प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा करके या प्रत्यर्थी के समक्ष ऐसे दस्तावेज रखकर, जिनका पता लगाए जाने की यदि अनुमति दी जाती तो संभवतः उनका पता लग सकता था, उस कथन की सत्यता की जांच करने की अर्जीदार को अनुज्ञा दिए बिना स्वीकार करना अर्जीदार को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन गारंटीकृत विधि की समता से वंचित करने की कोटि में आएगा । ऐसी सुविधा इस देश में सिविल न्यायालय में मुकदमा लड़ने वाले प्रत्येक वादी को प्रदान की जाती है । अतः, मैं इस मत से सहमत नहीं हूं कि यह निर्वाचन अर्जी नियमित सुनवाई के योग्य नहीं है ।

160. यहां विचारणीय भारत के राष्ट्रपति का पद नहीं बल्कि समता की सांविधानिक घोषणा और न्यायिक प्रक्रिया की विश्वसनीयता है ।

161. बहुमत की इस राय को देखते हुए कि निर्वाचन अर्जी किसी नियमित सुनवाई के योग्य नहीं है, मेरा इस प्रश्न की समीक्षा करने का प्रस्ताव नहीं है कि प्रत्यर्थी द्वारा लोक सभा के नेता के रूप में धारित दूसरा पद लाभ का ऐसा पद है अथवा नहीं, जिसके प्रति अनुच्छेद 58(2) के अधीन निरर्हता लागू होती है ।

निर्वाचन अर्जी खारिज की गई ।